विचार दृष्टि

वर्ष 11 जुलाई–सितम्बर, 2009 अंक–40 मूल्य : 25 रुपए

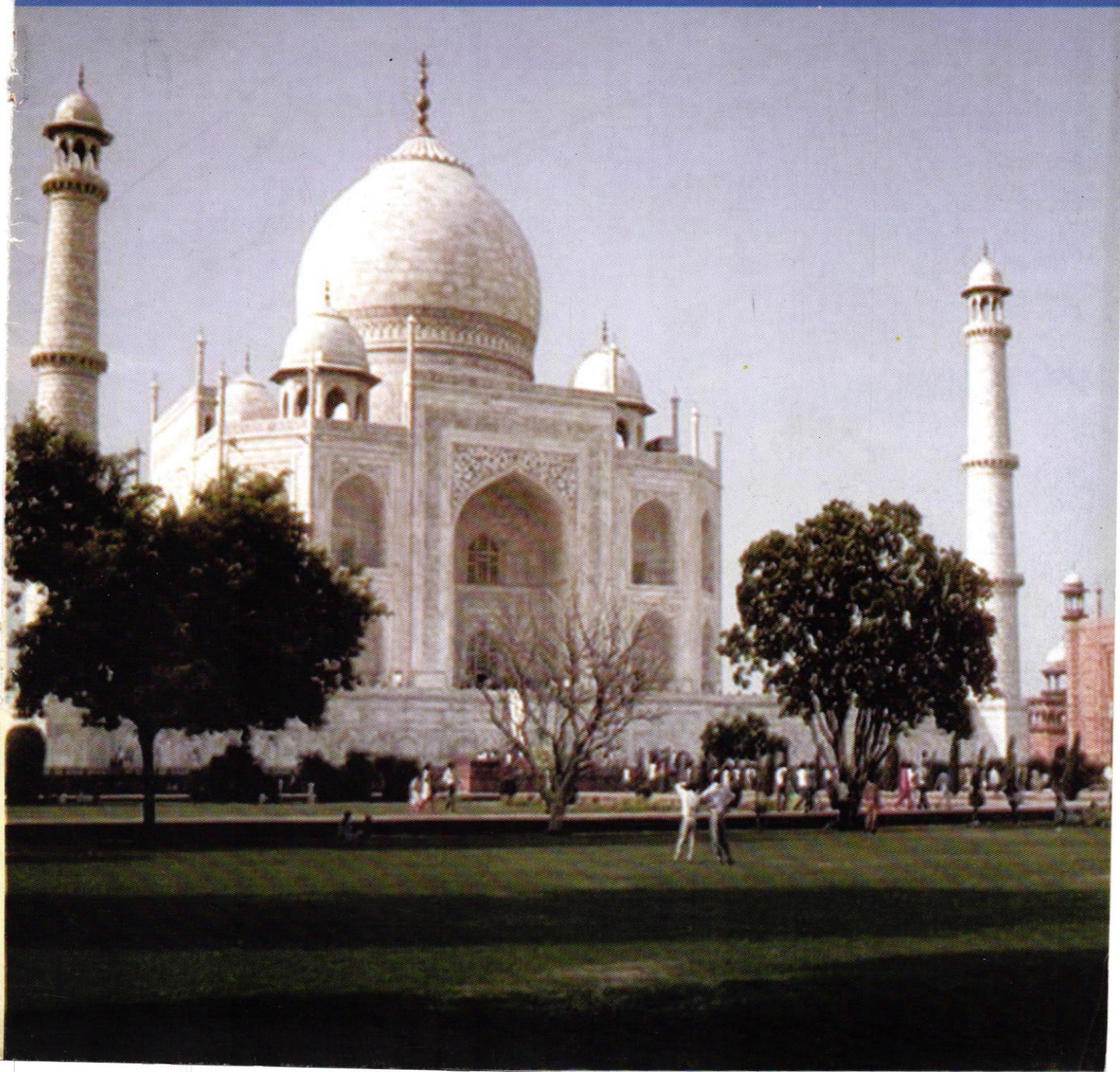

Emmar MGF • Creating & New India

EMAAR MGF

CREATING A NEW INDIA

RESIDENTIAL I COMMERCIAL, IT PARKS & SETz I RETAIL I HOSPITALITY I HEALTHCARE* I EDUCATION* I INFRASTRUCTURE*

Corporate Office : Emaar MGF Land Limited, ECE House, 28 Katurba Gandhi Marg, New Delhi-110001, Tel. : +91-11-4152 1155, Fax : +91-11-4152 4619, www.emaarmgf.com

विचार दृष्टि

(राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक त्रैमासिकी)

वर्ष- 11 जुलाई-सितम्बर, 2009 अंक- 40

संपादकीय सलाहकार : नंद लाल

संपादक-प्रकाशक : सिद्धेश्वर 9873434086

उप संपादक : उपेन्द्र नाथ 9313045675

: डॉ० शाहिद जमील 9430559161

सहायक संपादक : उदय कुमार 'राज़' 9868105864

: डॉ0 मणिकांत ठाकुर 9873261746

प्रबंध संपादक : सुधीर रंजन 9811281443

आवरण साज-सज्जा : अनिल वार्ष्णेय एवं विक्रम

संपादकीय-प्रकाशकीय कार्यालय

'दृष्टि', 6 विचार विहार, यू०-207,
शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92

: ☎ (011) 22530652 /22059410

मोबाईल : 9811281443/9899238703

फैक्स : (011) 42486862

E-mail: vichardrishti@hotmail.com

'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001

☎ 0612-2510519

पटना कार्यालय

आर० ब्लॉक, पथ सं० 5, आवास सं० सी०/6,
पटना-800001 ☎ 0612-2226905

ब्यूरो प्रमुख

कोलकाता : जितेन्द्र धीर 24692624

चेन्नई : डॉ० मधु धवन 26262778

तिरूवनंतपुरम : राजम नटराजम पिल्लै 09820229565

बैंगलूरू : बी०एस० शांताबाई

हैदराबाद : डॉ० ऋषभदेव शर्मा 23391190

जयपुर : डॉ० नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' 2225676

अहमदाबाद : रमेश चंद्र शर्मा 'चंद्र'

देहरादून : बडोनी

प्रतिनिधि

दिल्ली : प्रो. पी. के. झा 'प्रेम'

एन.सी.आर : प्रो. मनोज कुमार, संजीव कुमार

तिरूवनंतपुरम : डॉ० पी० लता

हैदराबाद : चंद्रमौलेश्वर प्रसाद

जयपुर : कृष्णवीर द्रोण

हिसार : डॉ० रामनिवास 'मानव'

देहरादून : डॉ० राज नारायण राय

उत्तरी बिहार : नरेन्द्र मिश्र

वित्तीय प्रबंधक : अरविंद कुमार उर्फ पप्पू

मुद्रक : प्रोलिफिक इनकारपोरेटेड एक्स-47, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-20

मूल्य. (एक प्रति)	:	25 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	200 रुपये
आजीवन सदस्य	:	1000 रुपये
विदेश में एक प्रति	:	US $ 05
वार्षिक	:	US $ 20
आजीवन	:	US $ 250

एक [ ] में रचना और रचनाकार

पाठकीय पन्ना ... 2

संपादकीय :

भारतीय लोकतंत्र की राजनीति और 15वीं लोकसभा के चुनाव ... 4

विचार प्रवाह :

साहित्यकार और पुरस्कार - प्रो. दीनानाथ 'शरण' ... 7

मुझे गुस्सा कब और क्यों आता है - सिद्धेश्वर ... 8

जनसरोकारों से दूर होती राजनीति - सिद्धेश्वर ... 12

व्यक्तित्व : शारीरिक आकर्षण या कुछ और .... डॉ. जयप्रकाश खरे ... 14

साहित्य :

'स्मृति दंश' (कहानी) डॉ. मंजु दुबे ... 17

पाँच कविताए डॉ. मणिकांत ठाकुर ... 19

कुछ मुक्तक डॉ. देवेन्द्र आर्य ... 20

सामयिक दोहे पं. जनार्दनप्रसाद द्विवेदी... 21

गंगा -डॉ. मोईनुददीन 'शाहीन' ... 21

युगधर्म - मुरारी पंचलगिया ... 22

आलोचना

समकालीन कहानियाँ और नारी मुक्ति संघर्ष - डॉ. मणिकांत ठाकुर ... 23

'नई कहानी' के सशक्त हस्ताक्षर - कमलेश्वर - डॉ. महेश चन्द्र शर्मा ... 25

कालीदास साहित्य में पर्यावरण - डॉ. नीरा कुमारी ... 26

जीवन का नया अध्याय : परदा गिरता है - - डॉ. सुषमा शर्मा ... 29

संस्कृति साहित्य की सार्थकता - लक्ष्मीकांत मिश्र ... 30

समीक्षा :

'हम मौन क्यों पिये हैं' -डॉ. राकेश कुमार सिंह (रचनाकार)... 34 -डॉ. सुषमा शर्मा (समीक्षक)

इंसानियत के आंइने में (हम मौन क्यों पिये हैं) -डॉ. राकेश कुमार सिंह (रचनाकार)... 35 -डॉ. चंद्रिका ठाकुर (समीक्षक)

वर्ग-संघर्ष के योद्धा की रूमानी कविता का संग्रह 'प्यास' - स्व. बालमुकुन्द राही (रचनाकार) - चितरंजन भारती (समीक्षक) ... 36

'कलंक' (अमूल्य स्मृति-मंजूषा में मानव-मूल्यों के मोती) - चरित्रपाल सिंह निम (रचनाकार) - युगल किशोर प्रसाद (समीक्षक) ... 38

समाज :

नई सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में स्त्री - उदय कुमार ... 40

सामाजिक समस्या का राजनीतिक हल - सिद्धेश्वर ... 42

भारतीय राजनीति में सामाजिक संचेतना और डॉ. अम्बेडकर - सिद्धेश्वर ... 44

संस्मरण

विष्णु प्रभाकर : 'अवारा-मसीहा' (जिनका पर्याय बना - सिद्धेश्वर ... 45

शख़्सियत :

सुरलोक, धरा या पाताल में हैं, वे बोस कहाँ - किस हाल में हैं - आर. डी. गुप्ता ... 48

गतिविधियां

रा.वि. मंच की बिहार शाखा की कार्यकारिणी की बैठक - अशोक कुमार तिवारी ... 53

समीक्षा	साहित्य	साहित्य	आलोचना	आलोचना	समाज

पत्रिका-परामर्शी

❑ पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ❑ डॉ० एन० चंद्रशेखरन नायर
❑ प्रो. धर्मेंद्र नाथ 'अमन' ❑ डॉ० बालशौरि रेड्डी ❑ डॉ० अहिल्या मिश्र
❑ डॉ० देवेन्द्र आर्य ❑ अरूण कुमार भगत

पत्रिका-परिवार के सभी सदस्य अवैतनिक हैं। रचनाकारों के विचारों से पत्रिका-परिवार का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'विचार दृष्टि' के अप्रैल-जून अंक के संपादकीय में हमारी शिक्षा पद्धति और हमारी संस्कृति के बीच बढ़ती खाई पर चिंता जताने का मुख्य कारण है कि स्वतंत्रता के छह दशक बाद भी कोई राष्ट्रीय शिक्षा नीति नहीं बन पाई है और हम अंग्रेजी पाठ्यक्रम चल रहे हैं। यह हमारे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि राजनीति के चलते हम राष्ट्रभाषा का सम्मान भी नहीं कर पाए। इस अंक में डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल' ने मानवाधिकारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि जब तक नागरिक जीवन-मूल्यों को आत्मसात नहीं करता, कर्त्तव्य पालन नहीं करता, सादा जीवन उच्च विचार का जीवनादर्श नहीं अपनाता तब तक मानवाधिकारों का संरक्षण असंभव है। डॉ. दीनानाथ शरण ने इतिहास का पन्ना उकेरते हुए बताया कि अकबर के नवरत्नों में से एक - राजा टोडरमल कायस्थ नहीं थे। उन्होंने खोजपूर्ण तथ्य भी प्रस्तुत किए हैं और पं. रामचंद्र शुक्ल की कृति 'हिंदी साहित्य के इतिहास' से भी इसकी पुष्टि की है (हिन्दी सा. का इतिहास, पृ.135)। डॉ. ऋषभ देव शर्मा ने सिद्धेश्वर जी के सम्पादकीयों पर संकलित कृति 'समकालीन संपादकीय' की समीक्षा करते हुए यह निष्कर्ष दिया है ''राष्ट्रीयता के विचार रूपी इस दीप को जलाए रखने के प्रयास के साकार रूपों के तौर पर सिद्धेश्वर के इस ग्रंथ का देश भर में स्वागत होगा, इसमें संदेह नहीं।''

एक चिंतनपरक अंक के लिए संपादक मंडली को बधाई।

- चन्द्र मौलेश्वर

1-8-28, यशवंत भवन, अलवाल, सिकंदराबाद-500010

पाठकों के पत्र

'विचार-दृष्टि' का जनवरी-मार्च 2009 वाला अंक-38 मिला। आभार! क्या मुझे पत्रकारिता पर केंद्रित 'विचार दृष्टि' के अंक-36 की एक प्रति मिल सकेगी? मैं आदर एवं प्रसन्नता सहित उस अंक को खरीदना चाहूंगा। ऐसे ही कुछ और भी विशेषांक हों, तो कृपया बतायें। आप के लेख से तो मैं वाकिफ हूँ ही। बधाई।

- आलोक भट्टाचार्य

18 अंबिका निवास (मॉडेल इंग्लिश स्कूल के पीछे) पांडुरंगवाड़ी, डोंबिवली (पूर्व) 421 201

फोन: 0241-2883629, मोबाइल, 9869680798

'विचार-दृष्टि' का अंक-39 मिला, आभार! संपादकीय 'ऊँचा होता शिक्षा का स्तर और लुप्त होती संस्कृति' नि:संदेह सामयिक और विचारोत्तेजक है। आपने समस्याओं के तह तक पहुँचकर खोजबीन की है। इसके समाधान के तौर पर एक सुझाव तो यही है कि पुन: पुस्तक-संस्कृति शुरू की जाए। हर गांव में विद्यालय के साथ पुस्तकालय की स्थापना की जाए। डॉ. र. शैरिराजन का 'तमिल भाषा में राष्ट्रभक्ति साहित्य' अनुपम बन पड़ा है। दरअसल, एक बहुत बड़ी कमी यह है कि उत्तर के लोग दक्षिण के संबंध में कुछ नहीं जानते अथवा कम जानते हैं। ऐसे में यह शोध लेख पाठकों के लिए सहायक सिद्ध होगी। जितेन्द्र धीर जी ने 'साहित्यिक पत्रिकाओं का अर्थशास्त्र' के बहाने सटीक मूल्यांकन किया है।

डॉ. दीनानाथ शरण का शोध-लेख 'इतिहास के साथ खिलवाड़ न हो' बहुत पसंद आया। काफी रोचक है यह। और रोचक है यह जानना कि आधुनिकतावादी लोग किस प्रकार अपनी पुरातनपंथी, संकीर्ण मानसिकता की सिद्धि के लिए इतिहास के साथ खिलवाड़ किया करते हैं। फिलहाल खत्री और कायस्थ के बीच टोडरमल कैसे हैं और अकबर यानी समय तमाशा देख रहा है।

- चितरंजन लाल भारती

कछाड़ पेपर मिल, पो. पंचग्राम, असम-788 802

फोन: 03845-273173, मोबाइल 9401374744, 9864871756

संदर्भ : टोडरमल - विषयक शोध-निबंध

मैंने राजा टोडरमल, जो सम्राट अकबर के दरबार में नवरत्नों में एक थे, की शिनाख़्त के संबंध में प्रो. डॉ. दीनानाथ शरण द्वारा भली-भाँति अनुसंधान किये गये लेख को अत्यंत सावधानी से पढ़ा है। यह उत्तर प्रदेश के फतेहपुर से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'क्रांतिस्वर' के दिनांक 5 जनवरी 2009 के अंक में छापा गया है। टोडरमल की जाति और पूर्वी पटना में गंगा नदी के किनारे नौजरघाट पर उनके द्वारा चित्रगुप्त-मंदिर के निर्माण के संबंध में विवाद है। हाँ, यह बात निर्विवाद है कि चित्रगुप्त महाराज केवल कायस्थों के ही नहीं, अपितु समस्त बुद्धिजीवी समुदाय के सर्वोच्च देवता माने जाते हैं। 'आदि मंदिर' के पुनरुद्धार एवं नवीकरण हेतु किये जा रहे

प्रयास सराहनीय हैं। हमारी शुभकामना है कि कार्य तेजी से आगे बढ़े।

अब टोडरमल के उद्‌भव एवं जाति के संबंध में विवाद के बारे में। 'श्री चित्रगुप्त आदि मंदिर प्रबंधक कमिटी' द्वारा सन् 2007 में प्रकाशित पत्रिका में एक लेख छापा गया है जिसका शीर्षक है 'कायस्थों के आदिपुरुष भगवान चित्रगुप्त की घर-वापसी।' उस लेख में श्री अनुपम ने लिखा है कि टोडरमल गया के अम्बष्ठ कायस्थों के 'मल' गोत्र के थे। उनके वृत्तांत के अनुसार टोडरमल जनकपुर से वाराणसी की वापसी यात्रा में सन् 1573 में पाटलिपुत्र में रुके; उन्होंने गंगानदी के चित्रगुप्त घाट पर चित्रगुप्त महाराज की पूजा की और चित्रगुप्त महाराज के सम्मान में एक भव्य मंदिर के निर्माण का निर्णय लिया। उन्होंने निर्माण का कार्य अपने नायब कुँवर किशोर बहादुर के जिम्मे किया। मंदिर साल-भर में बन गया। टोडरमल ने स्वयं मंदिर का उद्‌घाटन किया था। परंतु श्री कुमार ने अपने मत को किसी भी ऐतिहासिक स्रोत से सिद्ध नहीं किया है। केवल किंवदन्तियों का सहारा लिया है, अत: ज्यादा-से-ज्यादा यही कहा ज़ा सकता है कि यह उनकी कोरी कल्पना है।

एक अन्य व्यक्ति श्री रवीन्द्र किशोर सिन्हा ने अखिल भारतीय कायस्थ महासभा के 125वें राष्ट्रीय अधिवेशन-2008 के अवसर पर राजा टोडरमल पर प्रकाशित अपने लेख में टोडरमल का उल्लेख कायस्थ समाज के सर्वोच्च व्यक्ति के रूप में किया। उन्होंने लिखा कि टोडरमल बिहार के चम्पारण के कायस्थ परिवार के थे। इस सूचना हेतु श्री रवीन्द्र किशोर सिन्हा ने केवल एक लेख का सहारा लिया है जो सन् 1944 के 19 सितम्बर को एक हिंदी दैनिक 'विश्वमित्र' में छपा था। अपने मत के समर्थन के लिए उन्होंने उक्त लेख के कई उद्धरण दिए हैं। उनका कहना है कि टोडरमल किसी हुंकारमल के दूर-दराज के वंशज थे - हुंकारमल जो मूलत: पंजाब के बलेहपुर के थे और बाद में चम्पारण (बिहार) में आकर बस गए थे।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री कुमार अनुपम और श्री रवीन्द्र किशोर सिन्हा - दोनों - के वृत्तांत किंवदन्तियों पर आधारित हैं और इनमें ऐतिहासिक प्रमाणों का अभाव है। अत: उन दोनों के आलेख ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार नहीं किये जा सकते।

दूसरी तरफ, प्रो. डॉ. दीनानाथ 'शरण' ने प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री की गहराई में जाकर छानबीन की है। यहाँ तक कि वे मध्ययुगीन इतिहास के विशेषज्ञ विद्वानों - उदाहरणार्थ डॉ. इम्तियाज अहमद (निदेशक, खुदा बख़्श ओरियेंटल पब्लिक लाइब्रेरी); प्रो. (डॉ.) अनिल कुमार (बिहार रिसर्च सोसायटी) तथा प्रो. (डॉ.) वी.के. चौधरी (निदेशक, के.पी. जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पटना) से मिले - मिलकर उन्होंने विषय के संबंध में विचार-विमर्श किया। वे सभी इस विषय में एकमत थे कि टोडरमल जाति के खत्री थे, जैसा कि अबुल फज़ल के 'आईने अकबरी' में उल्लेख किया गया है - 'आइने अकबरी' जो मध्ययुगीन भारतीय इतिहास पर सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ है। यह मत अन्य विद्वानों-द्वारा भी समर्थित है- सीताराम टंडन (राजा टोड़रमल), बी.एन. लूनिया (अकबर महान), ए.एल. श्रीवास्तव (अकबर दि ग्रेट) एवं प्रख्यात इतिहासकार डॉ. जदुनाथ सरकार (स्टडीज़ इन मुगल इंडिया)।

मध्ययगीन इतिहास के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ बी.एन.लूनिया ने लिखा है कि टोडरमल उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले के लोहारपुर गाँव में एक खत्री परिवार में पैदा हुए थे। उनका कथन है कि अगस्त 1574 में अकबर ने पटना पर कब्जा कर लिया था। यद्यपि टोडरमल ने इस सैन्य अभियान में भाग लिया था परंतु उन्हें पटना में कोई कार्य-भार नहीं दिया गया था। टोडरमल के द्वारा पटना में चित्रगुप्त-मंदिर बनवाये जाने का कोई उल्लेख मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के उपर्युक्त किसी ग्रंथ में नहीं है। अन्य विद्वान् कयासुद्दीन अहमद-द्वारा संपादित 'पटना थ्रू दि एजेज़' में भी इस मंदिर-विशेष की कोई चर्चा नहीं है। सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक 'आइने अकबरी' (लेखक - अबुल फज़ल) में टोडरमल द्वारा बनवाये गये इस खास मंदिर का कोई जिक्र नहीं है जबकि अबुल फज़ल और टोडरमल दोनों ही 'अकबरी दरबार' के मंत्रिमंडल के सम्मानित सदस्य थे और अवश्य ही एक-दूसरे की उपलब्धियों से अवगत रहे होंगे।

'राजा टोडरमल' पुस्तक के लेखक सीताराम टंडन ने निज़ामुद्दीन की प्रसिद्ध पुस्तक 'तबक़्यात-ए-अकबरी' का जिक्र किया है जिसमें टोडरमल को खत्री बताया गया है। शाह नवाज खाँ हई की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज़ टोल्ड बाइ इट्स हिस्टोरियन्स' में भी टोडरमल को जाति का खत्री कहा गया है।

निष्कर्षत: मुझे अवश्य कहना चाहिए कि उच्च कोटि के साहित्यकार होने के बावजूद प्रो. दीनानाथ शरण ने एक इतिहासकार की तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दिया है। उन्होंने मुगल-कालीन इतिहास के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथों का अवगाहन किया। उस आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि राजा टोडरमल पंजाब के एक खत्री परिवार में पैदा हुए थे और पटना के नौजरघाट में आदि चित्रगुप्त मंदिर का निर्माण उन्होंने नहीं कराया था। इतिहास के विद्यार्थी होने के नाते मैं प्रोफेसर शरण के विचारों से पूर्णत: सहमत हूँ।

प्रो. (डॉ.) बी.के. सिन्हा

1-डी, राजेंद्र नगर, पटना-800016

हिंदी अनुवाद - राजभवन सिंह, पोस्टल पार्क, बुद्ध नगर, पथ सं.2, पटना-800001

भारतीय लोकतंत्र की राजनीति और 15वीं लोकसभा के चुनाव

भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और नीतिविहीन राजनीतिक दलों के गठजोड़ से प्रारंभ 15वीं लोकसभा के लिए चुनाव पिछले अप्रैल-मई 2009 में संपन्न हुए, मगर इसने राजनीतिक पक्षाघात की ओर इशारा करते हुए दुर्नीति-अनीति वाले संसद को जनता के सामने खड़ा कर दिया। दरअसल, हमारे चुनावी लोकतंत्र में चुनावी प्रक्रिया का कोई भी पक्ष धनबल और बाहुबल के प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है जिनमें पार्टी नेतृत्व, उम्मीदवार, पार्टी कार्यकर्ता और यहाँ तक कि मतदाता भी शामिल हैं। यह तो कहिए कि न्यायपालिका के हस्तक्षेप से बिहार के जाने-माने बाहुबलियों को चुनाव लड़ने से वंचित किया गया, फिर भी इन बाहुबलियों ने अपनी-अपनी पत्नियों को चुनावी मैदान में उतार कर अपने बाहुबल का परिचय तो दे ही दिया।

चुनाव की घोषणा होते ही गठबंधन और समीकरणों के बनने-टूटने तथा दोस्ती-दुश्मनी में बदलने का जो सिलसिला शुरू हुआ वह चुनाव होने के पूर्व तक जारी रहा और इसमें राजनीतिक दलों के सारे के सारे सिद्धांतों और उनकी विचारधाराओं को तिलांजलि दे दी गई। यहाँ तक कि पांच साल तक सत्ता-सुख प्राप्त करने के बाद भी कई राजनेताओं ने बेरहमी से अपने दल को छोड़ नए दल की सदस्यता ग्रहण कर टिकट पाया और मज़हब और जाति के नाम पर लड़ाई लड़ी। इन सबके बीच मंहगाई, बेरोजगारी, आतंकवाद, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार और विकास के मुद्दे दरकिनार कर दिए गए। सच कहा जाए तो जनता के सामने यही खेल पिछले छह दशक से खेला जा रहा है। पिछले चुनावों तक तो उम्मीदवार लाखों के खर्च में ही चुनाव लड़ लेते थे, अब इस बार तो करोड़ों के नीचे की बात हुई ही नहीं। अब काले धन का दुरुपयोग वोट खरीदने, हेलिकॉप्टर पर खर्च, शराबखाने, कार्यकर्त्ताओं व एजेंटों की मजदूरी पर खर्च, अघोषित गाड़ी, डमी उम्मीदवार, पत्रकार आदि पर किए जाने से खर्च और बढ़ गया है, जिस पर निर्वाचन आयोग का कोई वश नहीं। अब तक काले धन, जाति और संप्रदाय का समीकरण ही बनाया जाता है, चुनावी राजनीति की सफलता के लिए विचार और संघर्ष बिल्कुल पर्याप्त नहीं दिखता, सो पिछले चुनाव में भी यही दिखा। इसने ऐसी राजनीति और प्रशासन को जन्म दिया है जिसमें काले धन पैदा करने की खाली छूट है। धनतंत्र के सामने सब कुछ गौण हो चुका है। ऐसे में न तो राजनीतिक दलों की नीति एवं कार्यक्रमों की घोषणा की कोई सार्थकता रह गई है और न राजनैतिक दलों एवं ईमानदार राजनेताओं के सामने कोई चारा। और तो और आज जब कोई मतदाता भी अपना मत देने जाता है तो उसके ऊपर या तो जातिगत-मज़हबी सोच हावी होती है या कभी-कभी भय, प्रलोभन या आकर्षण भी किसी के मत को प्रभावित करते हैं। आमतौर पर उम्मीदवार की काबिलियत गौण हो जाती है। वैसे भी काबिल या ईमानदार राजनेता एक तो चुनाव लड़ने का साहस ही नहीं जुटा पाता और दूसरे जो ईमानदार उम्मीदवार साहस जुटा पाता है वह इतना आदर्शवादी होता है कि वह अपने पक्ष में जनमत जुटा ही नहीं पाता है। इसलिए उसके संसद में पहुँचने का सवाल ही नहीं उठता है। यह हमारे लोकतंत्र की एक बड़ी विडंबना है। 15वीं लोकसभा के चुनाव में एक विचित्र स्थिति यह भी देखी गई कि फ़िल्मी हस्तियों तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों अथवा आकर्षण व ग्लैमर वाले व्यक्तियों जिन्हें सार्वजनिक जीवन या जन-सेवा का कोई अनुभव नहीं रहता और न ही उनकी कोई सार्वजनिक समझ होती है, के राजनीति में आने और जीतकर संसद में जाने से काफ़ी नुकसान होता है, क्योंकि सांसद हो जाने के बाद न तो वे संसद जा पाते हैं और न सांसद की अपेक्षित भूमिका निभा पाते हैं। ऐसे बनावटी राजनेता सामाजिक सोच नहीं होने की वजह से देश की आम जनता के हित में जनप्रतिनिधि के रूप में कोई नीति बनाने में असमर्थ हो जाते हैं। वर्तमान वातावरण में तो ईमानदार एवं विचारसंपन्न व्यक्ति के लड़ने के लिए कोई उपयुक्त माहौल भी नहीं रह गया है। यहाँ तक कि वैसे लोगों को अपना राजनीतिक अस्तित्व बनाए रहने में भी कठिनाई हो रही है।

इसमें तनिक संदेह नहीं कि वर्तमान दौर में लोकतांत्रिक राजनीति कुलीनता के कब्जे से बाहर निकलती जा रही है। यही कारण है कि राजनीतिक गलियारों में चारों ओर गिरावट ही गिरावट नजर आ रही है। राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियाँ सिकुड़ती और क्षेत्रीय पार्टियाँ बढ़ती जा रही हैंनेता, 'मतदाता प्रबंधक' बनते जा रहे हैं और प्राय: प्रत्येक राजनीतिक दल में आंतरिक लोकतंत्र लगभग समाप्त होता जा रहा है। पिछले लोकसभा चुनाव में न तो उम्मीदवारों के चयन के लिए किसी समिति के गठन की बात सुनी गई और न ही संसदीय बोर्ड की बैठक हो पाई। प्राय: सभी दलों में शीर्ष पर बैठे राजनेता के इशारे पर सब कुछ होता रहा। इसलिए सारे कार्यकर्ता और उम्मीदवार बनने की लालसा लिए राजनेता शीर्ष पर बैठे मुखिया के दर्शन मात्र के लिए लालायित रहे और उन्हीं की गणेश परिक्रमा करते नजर आए।

15वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर चारों तरफ 'मुँह में राम, बगल

में छुरी' का बोलबाला तो रहा ही, प्राय: सभी राजनीतिक दलों के शीर्ष नेताओं के द्वारा आरोप-प्रत्यारोप का धुँआधार दौर चला। बिहार ही नहीं, तकरीबन सभी राज्यों में चुनाव के वक्त जातीय समीकरण बनते-बिगड़ते रहे, मगर बिहार में विकास के साथ सामाजिक सशक्तिकरण की बात कही गई। यानी समाज के सबसे निचले पायदान पर पड़े करोड़ों लोगों को आर्थिक रूप से पैरों पर खड़ा करना जिसके लिए निश्चित रूप से बिहार में विकास का दरवाजा खोला गया। मुझे यह कहने में तनिक भी झिझक नहीं कि बिहार में सत्ता पर विराजमान नेताओं के दिलों में जहाँ सत्ता और समाज को बदलने का सपना जुड़ा रहा है, वहीं बिहार को बदलने की आकांक्षा भी जुड़ी रही है।

विगत चुनाव के संदर्भ में एक बात जो मुझे खल रही है वह यह कि आज़ादी के छह दशक बीत जाने के बाद भी जाति की बातें हर जगह और हर स्तर पर होती रहीं। हर नेता ने जाति के नाम पर मतदाताओं को लुभाने की कोशिश की। दरअसल, सत्ता की ललक भारतीय राजनीति को जाति के घेरे से बाहर नहीं जाने दे रही है। आखिर तभी तो निर्वाचन क्षेत्रों की तलाश में राजनेता और उम्मीदवारों के चयन के वक्त राजनीतिक पार्टियाँ तथा गठबंधन क्षेत्र विशेष में मतदाताओं की जातियों की संख्या खोजते नज़र आए। दरअसल, लोकतंत्र की चादर का ताना-बाना अंदर ही अंदर देशवासियों खासकर राजनेताओं को एक ही बुनावट से जोड़ता है। कारण कि आज़ादी के बाद आज तक हमारे समाज सुधारकों और राजनेताओं में से गांधीजी के बाद से लेकर कितने ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने इस देश की आम जनता के बीच जाकर उससे सीधे उसकी भाषा में संवाद स्थापित करने का कष्ट उठाया है? उसे भरोसे में लेकर राष्ट्रहित में जाति व संप्रदाय जैसे क्षुद्रस्वार्थों के विसर्जन को कितने नेताओं ने प्राप्त किया है ताकि देश के हर वर्ग और उम्र के मतदाता आश्वस्त हों कि वे सौतेले बच्चे नहीं, बल्कि इस देश रूपी घर के जिम्मेदार और व्यस्क भाई-बहन माने जा रहे हैं। सच तो यह है कि उन्हें विश्वास में और साथ लिए बिना लोकतंत्र और चुनाव की सफाई और पुनर्रचना का कोई सपना न तो पूरा हो सकेगा और न सही शक्ल ले सकेगा। लोकतंत्र में चाहे जितनी भी कड़ी आचार संहिता बना ली जाए मगर वह राजनीति के आधारों और सत्ता की कुर्सी तक पहुँचने की प्रक्रिया में परिवर्तन किए बिना लागू नहीं हो सकती है।

लोकतंत्र की एक मर्यादा यह भी है कि चुनावी लाभ के लिए हिंसा व अपराधी तत्वों की दहशत का इस्तेमाल न किया जाए। इस बारे में चिंता इस वजह से भी बढ़ जाती है कि विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा 15वीं लोकसभा चुनावों में भी अपराधी पृष्ठभूमि के कुख्यात उम्मीदवारों को भी, चुनावी मैदान में उतारने से परहेज नहीं किया गया। चुनाव आयोग के द्वारा यह प्रयास किया जाना श्रेयस्कर होगा कि धनबल व अपराधी तत्वों के अनुचित चुनावी हस्तक्षेप को कम से कम किया जाए। इस बार के लोकसभा चुनावी विज्ञापनों पर हुए खर्च की शैली से यह स्पष्ट है कि आउटडोर, इंटरनेट, रेडियो और दूरदर्शन विज्ञापनों में बढ़ोत्तरी हुई है, मगर प्रिंट विज्ञापनों से नेता और पार्टियों का मोहभंग हुआ है। विज्ञापन के मर्म को समझने वाले नेता मान चुके हैं कि स्थानीय स्तर पर प्रभाव बनाने के लिए आउटडोर विज्ञापन का जवाब नहीं।

15वीं लोकसभा के चुनावों में मतदान का प्रतिशत कम होना न केवल राजनीतिक दलों, बल्कि लोकतंत्र को मजबूत बनाने का सपना देखने वालों के लिए भी चिंता का विषय होना चाहिए क्योंकि लोक की भागीदारी से ही संवरेगी लोकतंत्र की सूरत। दरअसल, इस बार किसी राजनीतिक दल ने जमीनी स्तर पर काम करने में दिलचस्पी नहीं दिखाई। दलों ने सोचा कि दिल्ली में बैठे-बैठे दूरदर्शन के जरिए अपना प्रचार घर-घर तक पहुँचा देंगे, लिहाजा उन्होंने वही किया।

जब तक देश का आम आदमी चुनाव में अपनी भागीदारी दर्ज नहीं कराएगा तब तक लोकतंत्र सार्थक साबित नहीं होगा और यह काम तभी होगा जब हम शिक्षा-व्यवस्था को परिवर्तन की बुनियादी चेतना से लैस कर पायेंगे। हमें पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया की समीक्षा करते हुए इसके कारण ढूँढने होंगे कि विजनाकांक्षाओं के प्रति इतनी उदासीनता क्यों है, केवल पढ़े-लिखे नहीं, बल्कि समाज के प्रति संवेदनशील शिक्षितों को भी अब आगे आना होगा। यही नहीं मध्यवर्ग की मानसिकता बदलने की भी ज़रूरत है। यह वही मध्य वर्ग है जो सरकार की नीतियों के केंद्र में होता है, लेकिन सरकार चुनने के प्रति यह वर्ग अपनी जिम्मेदारी नहीं समझता। इसके अतिरिक्त मौलिक कर्त्तव्यों को शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल कर नई पीढ़ी को जागरुक किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि प्रबुद्धजनों की उदासीनता से भी ये दिन देखने पड़ रहे हैं।

15वीं लोकसभा चुनाव के बाद राजनीतिक में अस्थिरता का खतरा स्पष्ट दिखाई दे रहा था, क्योंकि उसके तुरंत बाद सत्ता का असली जोड़तोड़ जो शुरू हुआ उससे लोकतंत्र तार-तार होने की प्रक्रिया सामने आई। अब सवाल यह उठता है कि क्या इसे यूँ ही जारी रहने दिया जाए? राजनीतिक पार्टियाँ जहाँ संसदीय लोकतंत्र की नींव हैं, वहीं एक स्तंभ भी। बगैर इनके संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रणाली में पार्टियों का आधार निश्चित विचारधारा, लक्ष्य एवं कार्यक्रम होता है, मगर आज के दौर में सब के सब उलट गए हैं जो चिंता का विषय है।

15वीं लोकसभा के चुनाव में हमें ऐसा माहौल देखने को मिला जिसमें

राष्ट्र की धड़कन व ग़रीबों की आवाज कहीं से भी सुनाई नहीं पड़ी। भोली-भाली जनता की भावनाओं को कुरेद कर कोई भी व्यक्ति आखिर कब तक महान बना बैठा रहेगा। इतना तो स्पष्ट है कि सत्ता को साध्य तथा साधन मानकर चलने वाले राजनेताओं ने मुद्देविहीन हो राष्ट्रहित व जनमानस की बुनियादी समस्याओं को दरकिनार कर गड़े मुर्दे उखाड़ आरोप-प्रत्यारोप के व्यंग्य बाजों से लोकतंत्र के महापर्व को धूमिल करने में ही अपनी महानता समझी, किंतु, उन्हें यह नहीं पता कि जनता सब समझ रही है। यदि जनता ऐसा नहीं समझती तो पी. चिदंबरम, लालकृष्ण आडवाणी तथा डॉ. मनमोहन सिंह जैसे शीर्ष के राजनेताओं पर अपने जूते-चप्पल उछाल कर अपने गुस्से का इज़हार नहीं करती। विरोध जताने के लिए नेताओं पर चुनाव प्रचार के दौरान जूते-चप्पल फेंकने की घटनाओं से ऐसा लगता है कि आम आदमी लोकतंत्र से ऊब चुका है और हताशा व निराशा में ऐसा कर बैठता है।

एक बहुधर्मी-बहुसंस्कृति और घनघोर क्षेत्रीय विषमताओं वाले भारत ने जब अपनी सांस्कृतिक पहचान में लोकतंत्र जोड़ लिया है तो लोकतंत्र के हम सभी पहरेदारों के लिए यह ज़रूरी हो गया है कि लोकतंत्र को लेकर फैल रही ऐसी हताशा व निराशा से मुक्त होने का उपाय सोचें और साथ ही अपनी जानकारियों और जन-सरोकारों को और मज़बूत तथा व्यापक बनाएँ। दरअसल, विचारधारावाले दल भी अपने उसूलों और सिद्धांतों से समझौता करते दिखाई दिए तथा सत्ताधारी लोग सुख-सुविधाभोगी और परिवारवादी बनते जा रहे हैं। सच कहा जाए, तो पिछले चुनाव में समूचा राजनीतिक परिदृश्य जस का तस था, वही चेहरे, वही दल-बदल, वही अधक्षेत्रीयता, जातीयता, सांप्रदायिकता, वही कट्टर अल्पसंख्यकवाद, वही पुराने घिसे-पिटे भाषण, आरोप-प्रत्यारोप और बाजारू सिद्धांत-निष्ठा। आमजन उदासीन और प्रबुद्धजन निर्लिप्त। वैचारिक बहस की कमी, राष्ट्र-निर्माण के स्वप्न नदारद। विभाजित राजनीति और खंड-खंड पाखंड। मुद्दे ढेर सारे पर चुनाव मुद्दाविहीन। यह चुनाव पेशेवर राजनीतिज्ञों को संसद और सत्ता दे गया।

मगर वर्तमान दौर की भारतीय राजनीति को केवल कोसने से तो काम चलेगा नहीं, अच्छे और विचारवान लोगों को इसे चिंता का विषय बनाना होगा और राजनेताओं को भी इस बात पर गंभीरता से विचार करना होगा कि जातीय समीकरण और क्षेत्रीय उन्माद तथा अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की नीति को महत्त्व न देकर विचारधारा के महत्त्व को समझने और राष्ट्रीय स्वरों को बढ़ावा देने की कोशिश की जाए। इन सभी पहलुओं पर राजनीतिक दलों और उसके राजनेताओं को विचार करना होगा कि उनके दल के भीतर आंतरिक जनतंत्र कैसे जीवित किए जाएँ और दिन-रात तुष्टीकरण की नीति को तिलांजलि देकर पूरे देशवासियों के हित की बात कैसे की जाए। एक प्रबुद्ध लेखक, साहित्यकार, पत्रकार प्राध्यापक तथा बुद्धिजीवी वर्ग के साथ-साथ सजग नागरिकों के लिए तो यह विवेकशीलता और भी जरूरी है, क्योंकि उसकी विवेकशीलता ही निर्धारित करती है कि अपने लोकतंत्र को कैसे जीवंत बनाए रखा जाए और जीवंत बनाए रखने के लिए कौन-से मूल्य ग्राह्य हैं और कौन-से त्याज्य। भारतीय राजनीति और 15वीं लोकसभा के चुनाव के परिप्रेक्ष्य में एक संवेदनशील और सजग नागरिक को भारतीय राजनीति की गिरावट से उत्पन्न खतरे का इतना तो अनुभव होना ही चाहिए कि हमारा लोकतंत्र कहाँ जा रहा है। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में कहीं लोक ही तो ओझल नहीं होते चले जा रहे? हमें आज इसकी तो पड़ताल करनी ही होगी कि आज की राजनीति में अपराधी, धनबल, बाहुबल, जातीयता, सांप्रदायिकता, अल्पसंख्यकवाद तथा भ्रष्टाचार किस हद तक स्थान पा रहे हैं और हमारा लोकतंत्र कहाँ तक उससे प्रभावित हो रहा है ? और यदि कहीं कोई चूक है तो उसके निदान के लिए हमें क्या करना होगा ? देशवासियों की सामुदायिक चेतना अथवा नागरिकबोध कहीं अप्रासंगिक तो नहीं होता जा रहा ?

अब वह वक्त आ गया है जब हम देशवासी अपनी पुरानी सोच को बदलें। एक बात तो माननी ही होगी कि आज देश की राजनीतिक स्थिति वैसी नहीं है, जैसी पहले थी। आज मतदाताओं में अधिकांश संख्या युवकों की है, जो इस बात को महसूस करने लगे हैं कि उनकी दुर्गति, बेरोजगारी और गरीबी के लिए ये राजनेता ही जिम्मेदार हैं। अब वे किसी को वोट का ठेकेदार मानने को तैयार नहीं हैं। वे इस बात को समझ गए हैं कि इन तथाकथित नेताओं ने उन्हें बेवकूफ बनाकर सिर्फ अपना उल्लू सीधा किया है और ये अपना घर भरकर हर पाँच वर्ष के अंत में झूठे आश्वासनों, भाषणों और वादों को लेकर हमारे पास चले आते हैं। समाज का जो नया युवा वर्ग है वह इस स्थिति को बर्दाश्त करने के लिए कतई तैयार नहीं है और वह सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ राजनीतिक परिवर्तन भी चाहता है। ऐसी स्थिति में रचनाकारों, पत्रकारों तथा देश के प्रबुद्ध चिंतकों-विचारकों का यह दायित्व बनता है कि वे चौराहे पर खड़े ऐसे युवा वर्ग को सही दिशा बताएं व उनका मार्गदर्शन करें, तभी भारतीय राजनीति के साथ-साथ भारतीय लोकतंत्र को भी मजबूत किया जा सकता है। इसके अलावा निष्पक्ष और स्वतंत्र तरीके से चुनाव के लिए चुनाव प्रक्रिया में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा, ताकि जनादेश का दुरुपयोग रोकने के साथ ही मतदाताओं को ठगने से बचाया जा सके।

साहित्यकार और पुरस्कार

○ प्रो. (डॉ.) दीनानाथ 'शरण', एम.ए., पीएच.डी.

वर्तमान 'सरकार' क्या पुराने ज़माने का राजा-महाराजा है जो साहित्यकारों को पुरस्कार देने का बेवजह वित्तीय बोझ उठाये हुए है ? आज का 'सरकारी कोष' किसी राजा या नवाब का खानदानी 'खजाना' नहीं कि मनमर्जी जिस पर चाहा लुटा दिया। यह जनतंत्र है, राजतंत्र नहीं। अत: वर्तमान सरकार को साहित्यिक पुरस्कार बाँटने का काम फौरन बंद कर देना चाहिए। यह लोकतंत्र की भावना के भी प्रतिकूल है, क्योंकि लोकतंत्र या जनतंत्र में सब जन एक समान हैं। भारतीय संविधान भी घोषित करता है कि सभी नागरिक समान हैं। तो, फिर साहित्यकारों में सरकार क्यों भेदभाव करती है? क्यों, किसी को पुरस्कार देती है और शेष (बाकी) सबको तिरस्कार? बाकी सभी साहित्यकारों की उपेक्षा क्यों? पुरस्कार दे, तो सबको दे; और नहीं तो किसी को नहीं। साहित्यकारों के प्रति यह सरकारी भेदभाव कदापि उचित नहीं है।

सरकार - लोक-कल्याणकारी सरकार - का काम पुरस्कार बाँटना नहीं है। हाँ, सरकार कल्याणकारी योजनाएँ बनाये, जैसे वित्तीय संकटों से जूझते साहित्यकारों को वित्तीय सहायता दे (1) यदि किसी कवि-लेखक को किसी संस्था-स्कूल या कॉलेज - से महीनों-महीनों वेतन नहीं मिल रहा है; (2) यदि कोई कवि-लेखक आर्थिक संकटों के कारण अपना या अपने सगे-संबंधियों का इलाज करने में असमर्थ है; (3) यदि कोई कवि या लेखक एक लंबे समय से साहित्य-सृजन में संलग्न है, परंतु उसकी कृतियाँ न कोई प्रकाशक छाप रहा है और न वह स्वयं छापने में समर्थ है; - तो इन और इन-जैसी संकट-संकुल परिस्थितियों में सरकार अवश्य उसे वित्तीय सहायता दे। शीघ्र से शीघ्र दे।

- इन स्थितियों में धन/पैसे/वित्तीय सहायता का वास्तव में सदुपयोग होगा, वरना पुरस्कारों पर पैसे बाँटना महज मूर्खता है, अपव्यय है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि पुरस्कार से किसी साहित्यकार का महत्त्व बढ़ता नहीं है, बल्कि इन दिनों - आज के माहौल में, तो और भी घट (कम) जाता है, क्योंकि यह सर्वविदित है कि पुरस्कार आजकल (1) गुट, (2) जात-पाँत, (3) राजनैतिक दलों से सांठ-गांठ, या जोड़-तोड़, और (4) 'चयन समिति' में साहित्यकार के 'प्रभाव' के बल पर मिलते हैं, या दिये जाते हैं। जाहिर है कि ऐसे में, कितने ही साहित्यिक 'बगुलों' को पुरस्कार मिल गया है, मिल जाता है; और कितने ही साहित्यिक 'हंस' साहित्य के सरोवर में छहलाते रह गए हैं, या पंख मारते रह गये हैं! आज 'हंसों' नहीं, 'बगुलों' की पूछ है; 'बुलबुलों' नहीं, 'उल्लुओं' की बन जाती है। तभी तो ''कद्रदानों की तबीयत का अजब रंग है आज। बुलबुलों को है ये हसरत कि वे उल्लू न हुए।''

पुरस्कार प्रदान करने हेतु गठित 'चयन-समिति' में भी ज्यादातर ऐसे ही लोग सदस्य हुआ करते या होते हैं जो सत्तारूढ़ पार्टी से सम्बद्ध होते हैं या उनके मनोनीत होते हैं। तथाकथित 'चयन समिति' में तटस्थ, निर्भीक एवं व्यापक अध्ययन-संपन्न सदस्य शायद ही होते हैं। हर सदस्य की किसी-न-किसी जात से, गुट से, राजनैतिक खेमे से साठ-गांठ होती है। ऐसे में कितने ही छुटभैये, तथाकथित साहित्यकार 'चयन समिति' में माननीय सदस्य बन बैठते हैं और अपने-अपनों को 'उपकृत' किया करते हैं। क्या यह भ्रष्टाचार नहीं है? यदि है तो इस प्रकरण में भी सी. बी.आई या निगरानी विभाग की जाँच हो। आज तक क्यों नहीं हुई?

उक्त तथाकथित 'चयन समिति' में स्त्रियों की भागीदारी क्यों नहीं होती? 'चयन समिति' में विदुषी लेखिकाओं को भी कम-से-कम चालीस प्रतिशत स्थान मिलना चाहिए जो बीस वर्षों से साहित्य-सृजन कर रही हों, किसी प्रतिष्ठित कॉलेज/यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रही हों, तटस्थ-निर्भीक और साहित्य के प्रति समर्पित हों।

उक्त 'चयन-समिति' में किसी भी नेता का प्रवेश हर्गिज नहीं होना चाहिए क्योंकि नेता अपनी 'पार्टी' का हित देखेगा, साहित्य का हित नहीं। उसी साहित्यकार को पुरस्कार देने पर जोर देगा, दबाव डालेगा जो उसकी 'पार्टी' से सम्बद्ध है, उसका चाटुकार है, या जिससे उसका अपना स्वार्थ सधता है या सधेगा। अत: उक्त चयन समिति में किसी भी नेता (पालिटिशियन) के प्रवेश पर सख्त पाबंदी होनी चाहिए।

अंत में, हम इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे को भी नज़रअंदाज नहीं कर सकते कि वास्तव में देखा जाये तो पुरस्कार से साहित्यकार का महत्त्व इन दिनों, आज के माहौल में, दूषित वातावरण में, बढ़ता नहीं है, बल्कि घट ही जाता है, क्योंकि साहित्यकार को पुरस्कार अब उसके साहित्य की महत्ता के कारण नहीं, अन्यान्य कारणों से मिल रहा है और वे 'अन्यान्य कारण' निश्चय ही भ्रष्टाचरण ही हैं।

यह भी प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी साहित्यकार के 'साहित्य' को

शेषांश पृष्ठ नं. 11 पर

मुझे गुस्सा कब और क्यों आता है

○ सिद्धेश्वर

साहित्य में आज मौलिक चिंतन का सर्वथा अभाव दिखता है। साहित्य में यदि नवीनता का भाव नहीं है, तो उस साहित्य का क्या मतलब। पता नहीं क्यों, लेखक नवीन प्रयोग से बचना चाहते हैं। संपादक होने के नाते मैंने अपने मित्र लेखकों व सहयोगी रचनाकारों से कई बार मौलिक लेखन के लिए अनुरोध किया है पर बार-बार आग्रह के बाद भी वे वही घिसी-पिटी चीजों को भेजकर 'विचार दृष्टि' में छापने का अनुरोध करते हैं। मेरा यह बराबर प्रयास रहा है कि साहित्य को मौलिक दृष्टि मिले और इसके लिए मैंने अभिनव दृष्टि अपनाई है जिसके परिणामस्वरूप 'विचार दृष्टि' के 'दृष्टि' स्तंभ में रिश्तों पर लगातार रचनाएँ आ रही हैं और उस पर प्रतिक्रिया भी कम नहीं आती।

वैसे भी साहित्यकार की बहुत सारी चीजें स्वयं में ही सर्जना होती हैं और यह तभी संभव है जब साहित्यकार नवीन दृष्टि अपनाए और अपने निजी अनुभव को पर्याप्त न मानें, बल्कि विचारों को निरंतर नए संदर्भों से जोड़ें और जरूरत पड़े तो लोकलुभावन विचारों को भी चुनौती देने से हिचकिचाए नहीं, तभी साहित्य का मकसद पूरा होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य आनंद का उद्‌भव कारक है यानी आनंद की उत्पत्ति साहित्य से ही है। ये ही कारण हैं कि साहित्य की सर्जना में अद्‌भुत आनंद है। साहित्य बिना समाज और जीवन के वाकई नीरस है, शुष्क है। साहित्य को नया आयाम प्रदान करने के लिए नित-नवीन विचारों को शामिल करने का मेरा प्रयास रहा है ताकि वे आम जनमानस का बिंब बन सके।

'मुझे गुस्सा कब और क्यों आता है' शीर्षक से यह रचना नए ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो शायद दीप-स्तंभ का काम करे।

मुझे गुस्सा तब आता है

जब राजनीतिक दलों द्वारा चुनावी घोषणा-पत्रों में भ्रष्टाचार मिटाने को मुद्दा नहीं बनाया जाता है और विदेशी बैंकों में 'जमा काले धन को उजागर करने की बात नहीं की जाती है। कारण कि भ्रष्टाचार और काले धन से आम आदमी का जीवन प्रभावित होता है, आम आदमियों को मिलने वाली सुविधाओं पर प्रभाव पड़ता है।

जब लोगों को जल्द न्याय दिलाने की बात दलों द्वारा नहीं की जाती है। उन्हें यह नहीं पता कि न्यायालयों में जितने मुकदमें लंबित हैं उन्हें यदि इसी रफ्तार से निपटाया गया, तो कम से कम सवा तीन सौ साल लग जाएँगे और न्याय पाने के लिए आदमी को कई जन्म लेने पड़ेंगे। देर से न्याय मिलने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है कहा भी गया है - Justice delayed, justice denied.

जब अपराधियों व बाहुबलियों को चुनाव लड़ने से वंचित नहीं किया जाता है और जटिल न्यायिक प्रक्रियाओं एवं व्यवस्थागत खामियों के चलते अधिकांश दुर्दांत अपराधी पैसे और अपने प्रभाव के बल पर बच निकलते हैं।

मुझे गुस्सा आता है यह सोचकर कि भारतीय राजनीति सिद्धांतों एवं मूल्यों पर आधारित न होकर पद, प्रतिष्ठा और आर्थिक लाभ के उद्देश्यों पर आधारित होती जा रही है जिसका दुष्परिणाम यह है कि लोकतंत्र का जनाजा निकलता जा रहा है और वह भीड़तंत्र में तब्दील होता जा रहा है।

मुझे गुस्सा तब आता है जब समाज व राष्ट्र को कुछ देने वाले को तरजीह न देकर वैसे लोगों का महिमामंडन और पोषण किया जा रहा है जो अनैतिकता, भ्रष्टाचार, काले धंधे, जातिवाद, हिंसा, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद, परिवारवाद और भाई-भतीजावाद में संलिप्त हैं।

जब पूरी तरह चाक-चौबंद बताई जा रही सुरक्षा व्यवस्था के बावजूद दिन-प्रतिदिन ताबड़तोड़ नक्सली घटनाएँ घट रही हैं और सुरक्षा एजेंसियाँ कहीं भी उग्रवादियों पर बीस नहीं पड़ रही हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नक्सली चिंतन संसदीय लोकतंत्र के खिलाफ है, क्योंकि वे मतदाताओं को चुनाव बहिष्कार के लिए उकसाते हैं और मतदान न करने के लिए धमकी ही नहीं देते, बल्कि मतदान के लिए जाने वालों के साथ-साथ प्रहरियों को बम से उड़ा भी देते हैं। नक्सली क्षेत्रों में पुलिस उनसे लोहा लेने की ताकत खो रही है।

जब हम पाते हैं कि वर्तमान आम-चुनाव लोकतंत्र का महापर्व व उत्सव न होकर राजनीतिक धोखाधड़ी का उत्सव साबित होता जा रहा है क्योंकि चुनाव के दौरान एक-दूसरे के खिलाफ खड़ी राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव बाद आपस में हाथ मिला लेती हैं जिससे जनादेश का घोर निरादर और दुरुपयोग होता है। दरअसल राष्ट्रीय दल हों या क्षेत्रीय - वे गिरोह की तरह हैं। वे अपने स्वार्थ और सत्ता पाने के लिए किसी से भी हाथ मिला लेते हैं। गठबंधन दलों के द्वारा न्यूनतम साझा कार्यक्रम सिर्फ जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए बनाया जाता है। राजनीतिक पार्टियों की निष्ठा न तो जनादेश के प्रति होती है और न ही अपनी नीतियों और

सिद्धांतों के प्रति। सच कहा जाए तो उनकी कोई नीति ही नहीं होती। आखिर तभी तो कथित सांप्रदायिक दलों के नेता अन्य किसी दल में चले जाने पर अचानक पंथ निरपेक्ष हो जाते हैं और खुद को ध र्म निरपेक्ष कहलाने वाला नेता यदि भाजपा या शिवसेना जैसी पार्टियों में शामिल हो जाता है, तो वह एक झटके में सांप्रदायिक हो जाता है।

जब यह जानते हुए भी कि आज के राजनीतिक परिदृश्य में किसी एक दल के द्वारा केंद्र अथवा राज्य में सरकार बनाना मुश्किल है; देश को अस्थिरता, आतंकवाद, सांप्रदायिकता, जातीयता, क्षेत्रीयता और परिवारवाद से बचाने के लिए बड़े दलों को मिलाकर राष्ट्रीय सरकार बनाने पर विचार नहीं किया जाता है।

जब राजनीतिक पदों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता और अधिकतम उम्र सीमा निर्धारित नहीं की जाती, जबकि सरकारी नौकरियों में ग्रुप 'घ' के कर्मचारियों के लिए भी उम्र सीमा निर्धारित है।

मुझे गुस्सा इसलिए भी आता है कि चुनावों में गिरते मतदान प्रतिशत पर केवल चिंता जाहिर की जाती है। ऐसा करने से काम नहीं चलने को है, बल्कि संविधान में आवश्यक संशोधन कर मतदान को अनिवार्य बनाने की आवश्यकता है। 15वें लोक सभा चुनाव में तैयारी और चाक-चौबंद सुरक्षा-व्यवस्था के बावजूद औसतन 50 प्रतिशत मतदान को पार नहीं किया जा सका। हालांकि मौसम की प्रतिकूलता, नेताओं की जन-विरोधी नीति और भ्रष्ट-आचरण आम आदमी की ज्वलंत समस्या का मुख्य मुद्दा न बनने तथा नक्सली गतिविधियों और अन्य असामाजिक तत्वों के हावी रहने की वजह से भी मतदाताओं में उदासीनता रही है मगर मतदाताओं की और विश्वास की कमी लोकतंत्र के लिए अत्यंत घातक है। नौकरी-पेशा एवं मध्यवर्गी कारोबारियों ने छुट्टी का लाभ तो उठाया, किंतु गर्मी में उन्होंने मतदान केंद्रों की कतार में खड़े होने की बजाय घरों में पड़े रहने को प्राथमिकता दी। एक नागरिक एवं मतदाता के तौर पर अपने महान दायित्वों के प्रति ऐसी कोताही अपराधपूर्ण कृत्य है। अगर पढ़ा-लिखा वर्ग अपने लोकतंत्र को जीवित रखने के लिए इतनी भी जहमत नहीं उठा सकता तो फिर उस पर मेरा गुस्सा स्वाभाविक है। दरअसल, सकारात्मक बदलाव की संभावना और बेहतरी की उम्मीद ही लोगों को बड़ी तादाद में मंतदान केंद्र की ओर ले जाती है, घर से निकलकर मतदान करने का कोरा महिमामंडन नहीं।

किसानों की समस्या के प्रति कोई भी राजनीतक दल गंभीर नहीं है यह सोचकर मुझे गुस्सा आता है। न तो खेती करने के लिए सिंचाई की समुचित व्यवस्था है और न खाद और बीज ही समय पर उपलब्ध हो पाता है।

समाज के प्रबुद्धजनों, लेखकों, रचनाकारों, चिंतकों व विचारकों पर हमें गुस्सा इसलिए आता है कि क्योंकि समाज पर उनका प्रभाव नहीं पड़ पा रहा है और इसके वर्चस्व को लोग स्वीकार नहीं कर पा रहे। उसके लिए उन्हें त्याग, तपस्या, सेवा, सहयोग, सत्-साहित्य की रचना, सद्कार्य और सद्विचारों को उद्भाषित करना होगा, समाज पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए उन्हें पहले अपने-आप को भी प्रभावशाली बनाना होगा और असामाजिक तत्वों से संबंध विच्छेद करना होगा, सच को सच कहने की आदत डालनी होगी क्योंकि भयाक्रांत व्यक्ति के दिल में अन्याय की टीस तो उठती रहती है पर अन्याय के विजयनाद से वह इतना दब जाता है कि उसमें सच कहने की हिम्मत ही नहीं होती। उनके मन से भय समाप्त करने के लिए बुद्धिजीवियों को आगे आना होगा। आज से पूर्व सामाजिक नियंत्रण था, जो आज समाप्त हो चुका है। इस विषम परिस्थिति में राष्ट्र को सबल बनाने के लिए समाज को स्वस्थ बनाना होगा।

हमें गुस्सा तब आता है जब समाज की मर्यादा को पुनर्स्थापित करने की बात नहीं की जाती है और अन्यायी लोगों का सामाजिक बहिष्कार नहीं किया जाता है। समाज का नेतृत्व करने के लिए हमें समाज व राष्ट्र के प्रति अपने आपको समर्पित करने में गौरवान्वित महसूस करना होगा, तभी जनमानस में आशा की किरण जगेगी और सत्य का प्रकाश बिखरेगा। यह काम इसलिए भी जरूरी है कि राजनेताओं ने अपने स्वार्थ साधन के लिए राष्ट्रीय ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर डाला है और हमारा समाज आज असहाय हो गया है। राजनीतिक दलों ने अपने हित के लिए अपराधियों की परिभाषाएँ बदल दी हैं। वे अपने दल में शामिल अपराधियों को अपराधी नहीं मानते। दरअसल वोट-बैंक की राजनीति ने उन्हें अंतहीन डरावनी और अंधी सुरंग की ओर धकेल दिया है और 'बाँटो और राज करो' की नीति पर हमारे राजनेता चल रहे हैं, वे हमारे लोकतंत्र का अपहरण करना चाहते हैं जिसे रोकना होगा।

हमें गुस्सा तब आता है जब मैं अपनी श्रीमती जी को प्रात: पांच बजे से रात्रि 11 बजे तक लगातार काम में व्यस्त देखता हूँ। वह एकाध घंटे के लिए भी आराम करना हराम समझती हैं। लगातार 18 घंटे तक कार्यों में व्यस्त रहते हुए वह अपना गुस्सा मुझ पर यह कहकर उतारती है कि 'मैं एक खेर भी घर का काम नहीं करता।' दरअसल, उनके साथ भी यह लाचारी है कि वह अपना गुस्सा आखिर किस पर उतारे। परिवार के अन्य सदस्य

यथा उनके पुत्र-पौत्र और पुत्रवधु सभी दिल्ली में है सो उन सदस्यों पर तो वह बिगड़ नहीं सकतीं। ले-देकर मैं बच जाता है, जिस पर उनका गुस्सा उतारना स्वाभाविक हो जाता है। मेरा गुस्सा भी यही सोचकर ठंडा हो जाता है। कभी-कभी कलम घिसते-घिसते जब मेरा मन उब जाता है तो मैं भी अपना गुस्सा श्रीमती जी पर इसलिए उतारता हूँ कि मेरे साथ भी वही लाचारी है। आखिर गुस्सा उतारूँ तो किस पर? इस स्थिति में मैं उन पर गुस्सा इसलिए उतारता हूँ कि वे भी गुस्से में आ जाएँ तो कुछ समय कट जाए, मगर गुस्सा-गुस्सी में दो-चार घंटे के लिए भी यों ही मुँह-फुलौवल हो जाए तो यह सोचकर पछतावा होने लगता है कि बेकार मैंने उन्हें जली-कटी सुना दी। फिर प्रायश्चित करने के अलावा कोई और उपाय रह नहीं जाता है, क्योंकि आपसी बातचीत तो अधिक देर तक बंद हो नहीं सकती। मेरी श्रीमती जी तो अपना कुछ गुस्सा हमारे मकान के एक हिस्से में किराये पर रहने वाली श्रीमती रिंकू पर उतार लेती हैं और वह हंस कर उसे सह लेती है या टार जाती है, मगर मेरे लिए तो कोई और विकल्प गुस्सा उतारने का रह नहीं जाता है। हाँ, कभी-कभार मेरे सहयोगी मित्र अवश्य मेरे गुस्से का शिकार बन जाते हैं, जो मेरे हजार बार कहने पर भी समसामयिक मुद्दों पर नहीं लिख पाते हैं या मौलिक चिंतन नहीं कर पाते हैं।

मुझे गुस्सा तब आता है जब तथ्यों से परे आरोप लगाते समय भी किसी की जीभ नहीं काँपती, न भाषाई शालीनता की फिक्र की जाती है, न पुराने जख्म हरे करने से परहेज किया जाता है, न बढ़-चढ़कर जीत के दावे करने में कोई संकोच करता है और न अपने काम का खुद बखान करने में कोई झिझक होती है। चुनाव के समय तो माहौल युद्ध जैसा हो जाता है, इसलिए लोग मोहब्बत और जंग में सब कुछ जायज मानने के जुमले पर खुलकर अमल करते दिखते हैं।

मुझे गुस्सा तब आता है जब सामान्य नागरिक विशेषकर शिक्षित एवं सजग नागरिक आज भी नागरिकता के अर्थ को वह महत्त्व नहीं देता है जिसकी उससे अपेक्षा की जाती है, अन्यथा चुनाव के वक्त मुद्दों पर केंद्रित न होकर बहस जाति, संप्रदाय, भाषा और क्षेत्र पर नहीं हुई होती। इस वक्त जो समस्या सबसे अधिक गंभीरता से बढ़ रही है वह है जातिगत तथा सांप्रदायिक आधार पर पंथनिरपेक्ष - सांप्रदायिक विभेद-जैसे मुद्दों का राजनीतिकरण। लोकतंत्र में अंतत: उत्तरदायित्व जनता-नागरिकों पर ही आ जाता है। नागरिकों के जैसे अधिकार बढ़ जाते हैं वैसे ही उनके कर्त्तव्य भी बढ़ जाते हैं। समाज के प्रति प्रतिबद्धता और राष्ट्र निर्माण में वह भागीदार बन जाता है। दरअसल, आजादी पाने के बाद भी इस अंतर को ठीक से समझा नहीं जा सका है। इसलिए 'राष्ट्रीय विचार' मंच तथा उसकी जैसी समानधर्मी संस्थाएँ, जो नागरिकता के उत्तरदायित्व का बोध करा रही हैं वे बधाई के पात्र हैं। दरअसल, गणतंत्र बन जाने के बाद नागरिक चेतना के विस्तार करने का कोई अभियान नहीं चलाया गया जो किसी भी गणराज्य का बुनियादी आधार है। उस संविधान में कड़क कहाँ से आयगी जिसके पन्ने-पन्ने नागरिकों के आँसुओं से भीगे हुए हों। इन आँसुओं को कैसे सुखाया जाए और हर आँख में आत्मविश्वास की लौ कैसे जलाई जाए, यह रास्ता सुझाने के लिए सजग नागरिकों और बुद्धिजीवियों को आगे आना होगा।

जब सार्वजनिक स्थानों पर कोई मंदिर, मस्जिद या चर्च का निर्माण कर लेता है। जबकि न्यायपालिका का स्पष्ट रुख है - सार्वजनिक स्थलों पर कोई चर्च, मंदिर या मस्जिद नहीं। दरअसल सार्वजनिक स्थलों पर किसी भी किस्म के प्रार्थनास्थल के निर्माण पर - फिर चाहे मंदिर हो, मस्जिद हो या चर्च - रोक लगनी चाहिए। हर देशवासी जानता है कि विगत कुछ दशकों में ऐसे प्रार्थना स्थलों के निर्माण ने जबर्दस्त जोर पकड़ा है जिन्हें सार्वजनिक स्थानों का अतिक्रमण कर बनाया गया है। महानगरों में जहाँ बच्चों के खेलने के लिए खाली जगह का मिल पाना अब अधिकाधिक दुश्वार साबित हो रहा है, वहाँ छोटे-मोटे पार्कों को भव्य मंदिरों में स्थानांतरित कर दिया गया है। एक सर्वेक्षण के अनुसार इस देश में मंदिर, मस्जिद और चर्च की संख्या, विद्यालयों से अधिक है, इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहा जाएगा?

सार्वजनिक स्थलों के अतिक्रमण कर बनाए गए प्रार्थना-स्थलों के पीछे महज आस्था का तत्व नहीं दिखता, बल्कि सच तो यह है कि ऐसे प्रार्थना स्थल निर्माताओं के लिए सोने की मुर्गी साबित होते हैं।

मुझे गुस्सा आता है उन रचनाकारों पर जिन्हें बेवजह अखबारों में छपने का शौक हो जाता है यानी उन्हें छपास का रोग हो जाता है। वैसे यदि किसी रचनाकार की रचना अच्छी है, तो उसे अखबारों में स्थान मिलना ही चाहिए। मगर जिनकी रचनाओं में आम जन के लिए कुछ भी नहीं, उसका छपना तो रचनाकार के लिए भी हितकर नहीं। आमतौर पर जब रचना सशक्त, सामाजिक और मौलिक चिंतन युक्त हो, तो वह पाठकों पर प्रभाव डालती है और वही रचना समाज का दर्पण बनती है।

मुझे गुस्सा आता है उन साधु-संतों और सन्यासियों और बाबाओं पर जो देश में शांति-सद्भाव का वातावरण बनाने की बजाए पाखंड और अंधविश्वास को बढ़ावा देकर भोली-भाली जनता को अंधे कुएँ में ढकेलते और लूटते हैं, जो आम आदमी की रोटी की इच्छा को भी पैरों तले रौंद कर अपनी

कुत्साओं को पूरा करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें ही आगे आना होगा जिनकी पीठ अन्याय सहते-सहते दीवार पर टिक गई है।

मुझे गुस्सा आता है बच्चों की उन आधुनिक माँओं पर जो अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाती हैं, जबकि माँ का दूध अमृत सरीखा कहा गया है, और उसमें सेहतमंद बच्चे का भविष्य छिपा होता है। अब तो वैज्ञानिकों का यहाँ तक कहना है कि स्तनपान कराना केवल शिशु की सेहत के लिए ही फायदेमंद नहीं, बल्कि यह माँ को भी उच्च रक्तचाप, मधुमेह तथा हृदय रोग जैसी बीमारियों से काफी हद तक सुरक्षा प्रदान करता है।

मुझे गुस्सा तब आता है जब बुजुर्ग सास-ससुर भी अपनी कामकाजी बहुओं से गरम-गरम रोटी-दाल की उम्मीद करते हैं। 'सोन्हा' और 'मुर-मुर' दोनों एक साथ कैसे चलेगा? जिस वक्त कोई बाप अपने बेटे की शादी किसी नौकरी पेशेवाली लड़की से करने की तलाश करते हैं उसी समय उन्हें यह सोचना चाहिए था कि उन्हें अपनी कामकाजी बहुओं से गरम-गरम रोटी-दाल नहीं मिलेगी।

मेरी पुत्रवधु सुनीता ने दस बजे अपने ऑफिस जाते-जाते मुझे यह बताया कि दिन में मेरे खाने के लिए उसने दो रोटियाँ बनाकर रख दी हैं, तो मैंने उसे बड़े इत्मिनान से कहा - बेटी, मेरे खाने की चिंता तुम बिल्कुल मत करो। तुम अपना काम देखो, तुमसे गरम-गरम रोटी की उम्मीद करना मैं कदाचित उचित नहीं समझता। जो बुजुर्ग सास-ससुर अपनी कामकाजी बहुओं से ऐसी उम्मीद करते हैं, वे सर्वथा पारिवारिक जिदगी में कष्ट उठाते हैं और कलह को जन्म देते हैं। अब तो स्थिति यह होती जा रही है कि साधारण गृहिणी बहुओं से भी यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए। नई पीढ़ी के परिवार में तो माँ-बाप आते भी नहीं, अच्छा हो वे अपनी जिंदगी अपने ढंग से जीना सीखें और बच्चों को भी अपने ढंग से जीने दें। 'लीव और लेट लीव' का फार्मूला अपनाएँ और तनाव से बचें, तभी उनका गुजारा होगा अन्यथा उन पर मेरा गुस्सा होना स्वाभाविक होगा।

मुझे गुस्सा तब आता है जब मैं पाता हूँ कि व्यक्ति स्वभाव से ही किसी न किसी रूप में ईर्ष्या की चादर व्यक्तित्व पर लपेटे रहता है। सभ्य एवं शिक्षित व्यक्ति भले चाहे किसी सीमा तक ज्ञान एवं बुद्धिमता अर्जित कर ले पर अपने आप को सुदृढ़ शक्तिशाली, ज्ञानी दर्शाने की आपसी होड़ में वह ईर्ष्या की चादर अपने अंग से नहीं उतारता। ऐसी ही विषम परिस्थितियों में समाज में विघटन की अदृश्य दीवार बनती व गिरती रहती है। कभी-कभी जाति एवं धर्म की संकीर्ण विचारधारा भी सांप्रदायिक प्रपंच को जन्म देती है जिसका अंत आक्रोश तथा खून-खराबे के रूप में ही देखा गया है।

मुझे गुस्सा उन विभिन्न धर्म के गुरुओं पर आता है जो पाखंड और आडंबर के पर्याय बने हुए हैं और मनुष्य की आत्मा को परमात्मा से मिलाने की भक्ति लीला रचते हैं। हम तो भारत के हिंदू धार्मिक जगत में एक नवावतार के रूप में बाबा रामदेव को मानते हैं जिन्होंने योग को मोक्ष प्राप्ति की रहस्यात्मक आध्यात्मिक प्रक्रिया से निकाल कर स्वास्थ्य प्राप्ति की एक सर्वसुलभ प्रक्रिया बना दिया है और उसे घर-घर पहुँचा दिया है। एक रोगी को यह आश्वस्ति ही मिल जाए कि वह रोग मुक्त हो सकता है और ठीक होकर सामान्य जीवन जी सकता है, तो वही बड़ी बात होती है, तिस पर बाबा रामदेव द्वारा सिखाए गए योग और उनके द्वारा निर्मित दवाओं का लाभ तो वस्तुत: लोगों को मिल ही रहा है।

पृष्ठ नं. 7 का शेषांश

क्या पुरस्कार की रकम (धन-राशि) की तुला पर तौला जा सकता है? पुरस्कार के पैसों के तराजू पर तौलना क्या उचित है? क्या तुलसीदास की रामायण को लाख, करोड़ या अरब रुपयों से तौला जा सकता है? क्या 'कामायनी' को रुपयों के तराजू पर आप तौल सकते हैं 'हल्दीघाटी' क्या इक्यावन ही हजार और 'कुरुक्षेत्र' एक लाख के बराबर है? शेक्सपीयर के नाटक महज पचास करोड़ और कालिदास के नाटक एक सौ करोड़ के समतुल्य हैं? किसी भी साहित्यिक कृति को किसी भी रकम की तुला पर तौलना सर्वथा अनुचित है - असंगत है। साहित्य अपनी तुला आप है। अत: ऐसे में, किसी भी साहित्यकार को किसी तय राशि का पुरस्कार देना हम तो उसका तिरस्कार ही मानते हैं - सम्मान नहीं, अपमान समझते हैं।

हाँ, आज हम सरकार द्वारा सम्पोषित राजकीय 'परिषदों - ऐकेडेमियों' जैसी सरकारी संस्थाओं से साहित्यकारों को दिये जा रहे पुरस्कारों की बदनाम रात में देख रहे हैं कि जुगनू-जैसे लोग चमक रहे हैं और साहित्य की सच्ची सोच-समझ नहीं रखने वाले लोग-बाग खूब तालियाँ पीट रहे हैं!!

जुगनू मियाँ की दुम जो चमकती है रात को
सब देख-देख उसको बजाते हैं तालियाँ!!

-दरियापुर गोला, बाँकीपुर, पटना-800004।

(लेखक प्रो. डॉ. दीनानाथ 'शरण' सन् 1954 से साहित्य-सेवा में रत हैं। सन् 1957 में इनकी पुस्तक 'हिंदी काव्य में छायावाद' आगरा से छपी थी। तब से साहित्य की कई विधाओं में इनकी चालीसों पुस्तकें प्रकाशित हैं। सन् 1959 से हिंदी-प्राध्यापक रहे और सन् 1998 में हिंदी विभागाध्यक्ष-पद से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र रूप से साहित्य-सृजन में सतत् संलग्न हैं। सन् 1965 से सन् 1968 तक विदेश-सेवा में भी रहे।)

जनसरोकारों से दूर होती राजनीति

○ सिद्धेश्वर

भारत एक पंथनिरपेक्ष देश है, फिर भी यहाँ धार्मिक राजनीति की जाती रही है। मतों का ध्रुवीकरण सांप्रदायिक दंगा फैलाकर तथा भड़काऊ भाषण देकर दंगा किया जाता है और लोगों को गुमराह किया जाता है। जनता बहुत देर में नेताओं का असली चेहरा पहचान पाती है। राजनीति में जो मुद्दा होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। पिछले दो दशक से मंदिर-मस्जिद और हिंदु-मुस्लिम की राजनीति की जा रही है जबकि गरीबी, बेरोजगारी, विकास, सुरक्षा, मंहगाई जैसी अनेक जन-समस्याएँ चुनौती बनकर खड़ी हैं।

दरअसल, वर्तमान दौर की भारतीय राजनीति और उसके नेताओं का चरित्र और चेहरा बदल चुका है, बल्कि सच कहा जाए तो उसका चेहरा मैला ही नहीं बहरूपिया हो गया है। हर पल और हर क्षण बदलते समीकरणों के आधार पर यह कहना मुश्किल है कि कौन-सा नेता और कौन-सा दल किसके साथ खड़ा है। नेता सुबह में यदि किसी एक दल के साथ है, तो शाम होते ही दूसरे दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है। विचारधारा से उनका कोई लेना-देना नहीं। राजनीतिक पार्टियाँ और उसके नेताओं को जहाँ लगता है कि सत्ता की चाश्नी का सुख यहाँ से उठाया जा सकता है तो वे आंखें बंद कर वहीं चल देते हैं। उनका प्रथम और अंतिम लक्ष्य किसी प्रकार से सत्ता प्राप्त कर लुत्फ उठाना है।

आखिर भारतीय राजनीति जनसरोकारों से क्यों विमुख होती जा रही है? क्या कभी गौर किया है आपने? हमारा युवा वर्ग, मध्य वर्ग, छात्र और प्रबुद्धजन या तो राजनीतिक प्रक्रिया से दूर होकर 'कोई नृप होऊ, हमें का हानि' की मुद्रा में रहता है या ये लोग संकीर्ण स्वार्थों से घिरे रहते हैं। आज हर व्यक्ति नेताओं से इसलिए संबंध रखना चाहता है कि या तो सही काम भी गलत तरीके से कराए जाएँ या गलत काम उनके माध्यम से कराए जाएँ। कारण कि हमारे राजनीतिज्ञ, लोकतांत्रिक व संवैधानिक संस्थाओं व संगठनों ने सही तरीके से काम करना बंद कर दिया है। अमेरिका तथा अन्य लोकतांत्रिक देशों में ऐसा देखने को नहीं मिलता। वहाँ वही लोग सक्रिय राजनीति में आते हैं, जो इसमें रुचि रखते हैं या जिनकी सामाजिक प्रतिबद्धता होती है अथवा उनमें राष्ट्रीयता की भावना, देश के प्रति कर्त्तव्य तथा आम जनता की भलाई का ज़ज़्बा होता है। इसके ठीक विपरीत इस देश के नेताओं तथा राजनीतिक दलों के चिंतन के दायरे में ये सब नहीं के बराबर रहते हैं। यही कारण है कि यहाँ के नेताओं, माफियाओं, पिछलग्गुओं, धनीबलियों, भ्रष्टाचारियों तथा बाहुबलियों के गलत कार्यों के बावजूद उनका कुछ नहीं बिगड़ता। कानून सिर्फ-गरीबों के लिए हैं आपने देखा नहीं, विभिन्न घोटालों में संलिप्त यहाँ के नेताओं व नौकरशाहों का अंततः बाल भी बाँका नहीं हुआ। जबकि तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की बेटी ने जब कार चलाने के नियम का उल्लंघन किया तो उसका भी चालान काटा गया। ऐसी स्थिति की इस देश में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अभी पिछले दिनों 15वीं लोकसभा के चुनावों में आपने देखा कि यहाँ की राजनीतिक पार्टियाँ आमजन से जुड़े मुद्दों को न लेकर अपने-अपने निजी मुद्दों या मंदिर-मस्जिद, अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण के साथ जनता के बीच गई, ताकि उन्हें भड़का या रिझाकर वोट प्राप्त कर सकें। भड़काऊ बयान को कैसे भुनाया जाए, राजनीतिक पार्टियाँ इसी की फिराक में रहीं। भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, भुखमरी आदि से कैसे मुक्ति मिले इसकी चिंता उन्हें कभी नहीं हुई। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि भ्रष्टाचार ही आज समाज की प्रायः सभी समस्याओं की जड़ है फिर भी न तो जनता और न ही हमारे देश के कर्णधार नेताओं को भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत हुई। भ्रष्टाचार की बुराइयों की बात तो की जाती है मगर जहाँ से यह बुराई पनपती है उसकी जड़ों में मट्ठा डालने से हमारे राजनेता और राजनीतिक दल डरते हैं। हमारा यही डर हमें लगातार कमजोर करता जा रहा है। यानी जनता और उसकी जन-समस्याएँ न चुनावी मुद्दा रहीं और न ही नेताओं को इसकी चिंता रही। जनता को सिर्फ उनके वोट के लिए लुभाया गया, क्योकि वोट ही जनता की असली ताकत है, मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस वोट की ताकत पर धीरे-धीरे नेताओं का कब्जा होता जा रहा है, चाहे वह धनबल के कारण हो या बाहुबल की वजह से। यदि समय रहते हम नहीं चेतते और वोट की ताकत का सही इस्तेमाल नहीं कर पाए, तो यकीन मानिए राजनीति और उसके नेताओं का चरित्र और चेहरा दिन-ब-दिन बदरंग और बदनुमा होता जाएगा।

आज हम इतिहास के एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहाँ भारत को दुनिया में एक उभरती हुई ताकत के रूप में सम्मान से देखा जा रहा है। हमें इस सम्मान का सही हकदार बनने के लिए भारतीय राजनीति में सुधार लाना होगा और हमें यह संकल्प लेना होगा कि हम अपने लोकतंत्र को मजबूत और पूर्ण बनाएँगे। मगर यह सब होगा कैसे? आज तमाम राजनीतिक पार्टियों में देश को जाति और क्षेत्र में बँटकर प्रधानमंत्री और मंत्रियों की कुर्सी हथियाने की होड़ लगी है। चुनाव जीतने के लिए गुंडा और माफियातंत्र को टिकट देने से आज किसी भी दल को परहेज नहीं रहा। राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों में जाति और संप्रदाय के मुद्दे प्रमुख और जनहित के मुद्दे गौण होते चले जा रहे हैं। यह तो एक तरह से लोकतंत्र का माखौल है।

हमें इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि एक सांसद के चुनाव पर तीन से पांच करोड़ रुपये की राशि खर्च होती है। अमूमन, चुनाव प्रचार के लिए एक दिन में होने वाला खर्च करीब पांच लाख रुपये होता है। विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र के लिए हुए 15वीं लोकसभा के चुनाव पर करीब 18 हजार करोड़ रुपए खर्च हुए। इस मायने में से भारत का यह आम चुनाव कुछ महीने पहले अमेरिका में हुए राष्ट्रपति के चुनाव पर हुए खर्च को भी पीछे छोड़ गया। उसमें तकरीबन 10 हजार करोड़ रुपए खर्च हुए थे। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय दलों की ओर से भी प्रत्येक प्रत्याशी को लगभग एक करोड़ रुपए चुनाव खर्च के लिए दिए जाते हैं। प्रत्याशी अपने स्तर से भी चुनाव में खर्च करते हैं।

विगत लोकसभा के चुनाव में एक विचित्र बात यह भी देखने को मिली कि राजनेता व प्रत्याशी एक दूसरे के खिलाफ अभद्र भाषा का प्रयोग करने से भी बाज नहीं आए जो लोकतंत्र के लिए स्वस्थ परंपरा नहीं कही जाएगी। दरअसल, भारतीय राजनीति के राजनेताओं में सामान्य शिष्टाचार भी समाप्त होते जा रहे हैं। आपने देखा कि भारतीय राष्ट्र के शिखर पद के दावेदारों के बीच 15वीं लोकसभा चुनाव के वक्त संवादहीनता की स्थिति रही। आपको याद होगा कि विरोधी राजनीति के शिखर पुरुष डा. राम मनोहर लोहिया ने लोकसभा में 21 अगस्त, 1963 के दिन प्रधानमंत्री पर सीधा हमला बोलते हुए कहा था, "27 करोड़ आदमी तीन आने रोज के खर्च पर जिंदगी चला रहे हैं, जबकि प्रधानमंत्री के कुत्ते पर तीन रुपये रोज का खर्च करना पड़ता है।" नेहरू जी तिलमिला गए थे डॉ. लोहिया की यह बात सुनकर, मगर दोनों की दोस्ती दुश्मनी में नहीं बदली।

सच तो यह है कि जनतंत्र स्वस्थ आलोचना से ही चलता है। सतत जन-संवाद से ही सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है। वाद-प्रतिवाद में अद्‌भुत ताकत होती है। पास्कल ने ठीक लिखा था, "एक छोर पर जाकर ही कोई अपनी महानता प्रकट नहीं करता। दोनों छोरों को एक साथ छूते हुए बीच की समूची जगह को भरने से ही महानता प्रकट होती है।" इसी प्रकार हेगेल ने वाद-विवाद के मिलन को संवाद कहा था। लेकिन व्यक्तिगत आरोप-प्रत्यारोप, आक्षेप वाद-प्रतिवाद नहीं होते। लेकिन, यहाँ विचारहीनता है।

देश की विषम एवं भयावह स्थिति के मद्देनजर हमें ऐसी ताकत बनानी होगी, जिससे सत्ता पर काबिज हुक्मरान डरे और जनता का काम करे। आज तंत्र ही गण पर हावी है जिसके परिणामस्वरूप जनता का बोझ उतरने की बजाय और उस पर लद जाता है। कारण कि सामंतवाद अभी भी सत्ता पर विराजमान तथा तंत्र के लोगों पर जड़ जमाए हुए है जिससे मुक्ति पाना ही होगा। हमें यह याद रखना होगा कि गणतंत्र मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास का एक अनुपम वरदान है जिसे हर हाल में बचाना है। इस संदर्भ में एक और बात पर चर्चा करना समयोचित होगा कि आज की राजनीति में केवल उन्हीं लोगों को मौका मिल पाता है जो ऊँची पहुँच, पैसेवाले या फिर सिफारिशी होते हैं। अब तो ऐसी स्थिति हो गई है कि केवल चापलूस अथवा सिफारिशी लोगों को ही अहमियत दी जा रही है। दरअसल राजनीति में चापलूसी और सिफारिशी प्रवृत्ति ने एक बड़ी विकृत्ति का रूप ले लिया है। ये इतनी गहरे पैठ गई है कि अपील, आह्वान आदि करने से कुछ भी होने वाला नहीं है। इन विकृतियों की वजह से ही राजनीति में न तो सही सोच वाले युवाओं की भागीदारी हो पा रही है और न ही अन्य वर्गों के लोगों की। विडंबना यह है कि एक ओर इन विकृतियों को हर संभव तरीके से संरक्षण दिया जा रहा है और दूसरी ओर यह रट भी लगाई जा रही है कि अच्छे लोग, राजनीति में भागीदारी के लिए आगे आएँ। दरअसल राजनीतिक बुराईयों को समाप्त करने के लिए किसी क्रांतिकारी पहल की दरकार है। इस पहल को आक्रामकता के साथ आगे बढ़ाने की जरूरत है, तभी उस ढांचे को चरमराया जा सकता है जिसमें राजनीतिक विकृतियों को संस्कृति मानकर संरक्षण किया जा रहा है।

व्यक्तित्व : शारीरिक आकर्षण या कुछ और....

○ डॉ. जय प्रकाश खरे
व्याख्याता, राजनीतिशास्त्र विभाग
मारवाड़ी महाविद्यालय, राँची

व्यक्तित्व व्यक्ति का वह आभूषण और लिबास है जिसे धारण कर वह परिवार, समाज, राज्य और विश्व स्तर पर अपनी विशेष पहचान बनाता है परंतु यह आभूषण और लिबास उस आभूषण और लिबास से भिन्न है, जो शारीरिक सुंदरता बढ़ाने वाला और शरीर को आकर्षक बनाने वाला होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्तित्व के संबंध में लोगों की यह सोच है कि व्यक्तित्व में लोगों को आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता होती है, जो शरीर की सुडौल बनावट, आकर्षक रंग-रूप तथा शरीर को कीमती लिबासों और आभूषणों से सजकर आकर्षक बनता है। अपने आपको आकर्षक शख्सियत के रूप में सुंदर चेहरे से चर्चित कराया जा सकता है, यह सही नहीं है। अगर ऐसा होता तो प्रत्येक खूबसूरत चेहरे और सुडौल शरीर का स्वामी वस्त्र-आभूषण और सौंदर्य प्रसाधन का उपयोग करने वाला मनुष्य अपनी ओर लोगों को आकर्षित कर खुद को व्यक्तित्व का धनी कहलाने का हक प्राप्त कर लेता। फिर ऐसे महामानव भी हैं जिन्होंने ऋषि-मुनि और तपस्वियों के रूप में जीवन बिताया, उन्होंने युग पुरुष होने की गरिमा हासिल की। उन्होंने अपने कार्य व्यवहार, विचार और नेतृत्व से जीने का उच्च मानदण्ड स्थापित किया। समाज एवं लोगों को बदलने का कार्य किया और युग द्रष्टा के रूप में मानव मूल्यों की स्थापना की। समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना की और लोगों को कर्त्तव्यनिष्ठ रहने की प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने कुछ अपवादों को छोड़कर न तो शरीर के माध्यम से आकर्षण पैदा किया और न ही शरीर को कीमती लिबासों, आभूषणों एवं न ही सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग कर अपने आपको आकर्षण का केंद्र बनाया। उनके प्रति लोगों का आकर्षण न केवल उनके जीते जी रहा बल्कि मृत्यु के पश्चात वे सब अभी भी विश्व समाज और व्यक्ति के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। यह तथ्य इस ओर इंगित करता है कि शारीरिक आकर्षण की अपेक्षा आचार-विचार और व्यवहार के माध्यम से लोगों को आकर्षित करना ही व्यक्तित्व की कसौटी है। होमर, मिल्टन, सूरदास, अष्टावक्र, हेलन केलर, लुई ब्रेल जैसे लोग आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे, परंतु शारीरिक रूप से लाचार थे। वहीं गाँधी, मण्डेला, लिंकन, विवेकानंद, कार्ल मार्क्स, प्रेमचंद, अमिताभ बच्चन तथा लता मंगेशकर जैसी चर्चित हस्तियाँ लोगों के आकर्षण के केंद्र हैं। इनके आकर्षण शारीरिक न होकर आंतरिक गुणों को ही दर्शाते हैं। क्योंकि इनके प्रति आकर्षण का भाव शारीरिक उत्तेजना उत्पन्न करने वाला न होकर एक सौम्य भाव जगाने वाला है। इन शख्सियतों में इनके आंतरिक गुण, विचार एवं व्यवहार से अभिव्यक्त होते हैं।

वैसे अंगरेजी का 'पर्सनालिटी' लैटिन शब्द 'परसोना' से बना है, जिसका सामान्य अर्थ होता है 'मुखौटा'। यह शारीरिक भाव को ही दर्शाता है। परंतु इससे व्यक्तित्व का अधूरा अर्थ ही स्पष्ट होता है। पूर्ण व्यक्तित्व के लिए मुखौटे के पीछे जो मनुष्य में छुपे आंतरिक गुण और प्रतिमान हैं, वही व्यक्तित्व को पूर्ण एवं सही अर्थ प्रदान करते हैं। फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या सुडौल शरीर के मालिक एवं चेहरे के माध्यम से आकर्षित करने वाले स्त्री-पुरुष का कोई व्यक्तित्व नहीं होता? या व्यक्तित्व की पूर्णता में शारीरिक संरचना और रूप-रंग का कोई योगदान नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर न तो 'ना' में दिया जा सकता है और न ही 'हाँ' में! परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनका भी अपना एक व्यक्तित्व है क्योंकि वे आकर्षण का जादू जगाकर अपनी शख्सियत का परिचय दे सकते हैं। शरीर आकर्षक हो, उनमें कोई आंतरिक गुण और प्रतिभा नहीं हो, ऐसी स्थिति में वह क्षणिक होता है। अपितु ऐसे लोगों का व्यक्तित्व आकर्षक होते हुए भी साधारण ही होता है। उदाहरणार्थ जब महिलाओं की सौंदर्य प्रतियोगिता होती है तो शारीरिक सुंदरता के आधार पर 'मिस यूनिवर्स' और 'मिस वर्ल्ड' का ताज नहीं दिया जाता, वरन् उन्हें यह ताज तभी प्राप्त होता है, जब वे अपने शारीरिक सौंदर्य के प्रदर्शन के साथ अपने आंतरिक गुणों से भी निर्णयकों को अत्यधि प्रभावित करती हैं।

अत: व्यक्तित्व व्यक्ति को बाह्य जगत् से उसके आंतरिक गुणों के माध्यम से परिचित करता है। फिर व्यक्ति में आंतरिक गुणों की मौजूदगी जन्मजात है या ये आंतरिक गुण के साथ माहौल और परिवेश के अनुरूप संस्कार और शिक्षा के आधार पर निरंतर विकसित होते हैं - इस संबंध में कोई सर्वसम्मत राय नहीं है। कुछ लोगों का यह मानना है कि व्यक्ति में आंतरिक गुण जन्मजात होता है और उन आंतरिक गुणों को पहचान कर उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से तराशा जा सकता है। कलाकारों, खिलाड़ियों और शिल्पियों के वर्ग इसके उदाहरण हैं, तभी तो शायद कोई दूसरी 'लता मंगेशकर' दूसरा 'लियोनार्डो द विंची' और 'पेले' अभी पैदा नहीं हुए और न ही शिल्पियों का वह वर्ग पैदा हुआ जिसने ताजमहल बनाया था। परंतु विचारकों का एक दूसरा वर्ग भी है जो यह मानता है कि व्यक्तित्व को शिक्षा, अच्छे संस्कारों एवं विचारों से गढ़ा

जा सकता है। जिस प्रकार कोई शिल्पी अपनी शिल्प कला का प्रयोग कर मिट्टी को सुंदर मिट्टी के बर्तन, मूर्ति इत्यादि का आकार दे देता है, ठीक उसी प्रकार शरीर को भी अच्छी शिक्षा, संस्कार, प्रशिक्षण इत्यादि के संयोग से आंतरिक गुणों से सजाया जा सकता है। महान् विचारक प्लेटो ने कहा है कि मानव मस्तिष्क एक कोरे स्लेट के समान है, जिस पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। उनका आशय व्यक्तित्व के निर्माण से ही था। अगर व्यक्तित्व निर्मित होता है तो व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार और समाज की अहम् भूमिका होती है। अगर पारिवारिक माहौल सही होगा, परिवार अच्छे संस्कारों को अपने विकसित हो रहे बच्चे में स्वस्थ रीति-रिवाजों और प्रथाओं के माध्यम से उसके लिए अच्छा शिक्षा का प्रबंध करेगा, ऐसा परिवार किसी भी व्यक्ति के व्यक्ति के विकास में सहायक सिद्ध होगा।

महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व में अपने कर्त्तव्य के प्रति जो समर्पण का भाव था और दूसरों के अधिकारों के प्रति जो आदर था, अहिंसा के प्रति जो उनकी आस्था थी, वह किसी-न-किसी रूप में उन्हें अपने परिवार से ही प्राप्त हुए थे। क्योंकि उनका परिवार वैश्य था, जो पूर्ण निरामिष था। महात्मा गाँधी पर उनकी माता पुतली बाई के इस कथन का प्रभाव था कि सारे अधिकार कर्त्तव्य का अनुपालन कर ही प्राप्त होते हैं। माँ ने गाँधीजी को अपने कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण समर्पित बनाया। उन्होंने जब इसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में किया तो इतिहास साक्षी है कि महात्मा गाँधी ने मानवता की कितनी बड़ी सेवा की। इस सेवा में गाँधी ने अपने संपूर्ण जीवन को आहूत कर दिया, यह बात किसी से छिपी नहीं है।

दूसरा उदाहरण शिवाजी के विषय में भी प्रसिद्ध है। इनके भी व्यक्तित्व निर्माण में इनकी माता जीजाबाई की अहम् भूमिका थी। लेकिन यह भी सत्य है कि परिवार के सहयोग से ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्ण नहीं होता, वरन् व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक संस्थाओं जैसे शिक्षण संस्थानों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा प्रदान करने वाले गुरु का प्रभाव एवं योगदान व्यक्तित्व के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय संस्कृति में एक कहावत प्रचलित है - 'गुरु गोविंद दोउ खड़े काको लागू पाँय, बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविंद दियो बताए'।

व्यक्तित्व व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि उसकी आर्थिक स्थिति, धर्म, जाति, परिवेश और परिस्थिति जिसमें वह रहा है, पर निर्भर करता है। उसके सहपाठी एवं खेल विशेष में उसकी रुचि, समाज में प्रचलित अच्छी या बुरी प्रथा एवं परंपरा, विचार एवं शिक्षा को नकारात्मक एवं सकारात्मक रूप में ग्रहण करना - इन सारी बातों का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण पर अवश्य पड़ता है। महारानी लक्ष्मीबाई का लालन-पालन जिस माहौल में हुआ और जिस प्रकार उन्होंने घुड़सवारी, तलवारबाजी, लड़कों से संबंधित खेल-कूद में रुचि लेनी जारी रखी, उसका प्रभाव यह हुआ कि वे निर्भीक, साहसी एवं शक्तिशाली महिला के रूप में सामने आयीं। अपने आन-बान और राज्य का मान-सम्मान रखने के लिए उन्होंने जिस वीरता का परिचय दिया, बलिदान दिया, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। इससे सिद्ध होता है कि व्यक्तित्व पर माहौल, परिस्थिति, लालन-पालन एवं रुचि का प्रभाव पड़ता है। एक प्रश्न यह महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्तित्व अगर मनुष्य के आंतरिक गुणों के आचार-विचार एवं व्यवहार के माध्यम से अभिव्यक्त होता है, तो ऐसा व्यक्ति जिसके पास कोई आंतरिक विशिष्ट गुण नहीं है, क्या उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है? इसका उत्तर यह होगा कि हर व्यक्ति का अपना एक व्यक्तित्व होता है, जो अपने आंतरिक गुणों के आधार पर लोगों में अपने प्रति आकर्षण पैदा करते हैं। ऐसे व्यक्ति सकारात्मक व्यक्तित्व के धनी होते हैं। जिन लोगों के व्यक्तित्व में आंतरिक गुणों के स्थान पर आंतरिक विकृतियों का निवास होता है, ऐसे लोगों के प्रति कुछ लोगों का आकर्षण होता है। ऐसे लोग विध्वंसकारी और अपराधी प्रवृत्ति-चरित्र के व्यक्ति होते हैं। जिन लोगों में आंतरिक गुण होते हैं, उनके आंतरिक गुणों के समक्ष दुर्गुणों का प्रभाव नगण्य हो जाता है। ऐसे लोगों के व्यक्तित्व पर सद्गुणों की छाया रहती है। जिनमें दुर्गुणों की प्रधानता रहती है, उनके सद्गुण दुर्गुणों के अधीन हो जाने के कारण उनका व्यक्तित्व दब जाता है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर विवेक (रीजन; और वृत्ति (इंस्टींक्ट) होता है। अगर विवेक की मात्रा वृत्ति की मात्रा की तुलना में अधिक है तो वह व्यक्ति सकारात्मक व्यक्तित्व वाला होगा। अगर उसमें विवेक की अपेक्षा वृति की प्रचुरता का आधिक्य है, ऐसा व्यक्ति नकारात्मक या विध्वंसकारी प्रवृत्ति का होगा। नकारात्मक प्रवृत्ति के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को सकारात्मक प्रकृति का व्यक्ति बनाया जा सकता है अगर व्यक्ति में मौजूद वृत्ति को सकारात्मक रूप प्रदान किया जाय। जैसे तोड़-फोड़ और विध्वंश में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को खेल की ओर प्रेरित कर दिया जाये तो वे अपनी विध्वंसाात्मक वृत्तियों को अच्छे अभ्यास एवं प्रशिक्षण से खेल-कूद की ओर मोड़कर एक सफल खिलाड़ी बन सकते हैं। एक सफल खिलाड़ी होने के लिए उस खेल में माहिर होने के साथ-साथ उसे संघर्ष करने वाला और अंतिम समय तक हार न मानने वाला होना अत्यंत आवश्यक है जिससे वह अपनी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करके उसका सकारात्मक प्रयोग कर सकता है।

विवेक को विकसित वृत्ति और वृत्ति को अविकसित विवेक कहा जाता है। इसलिए अविकसित विवेक या वृत्ति को विकसित वृत्ति और विवेक में शिक्षा, प्रशिक्षण और मोटीवेशन के द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। नकारात्मक प्रवृत्ति का व्यक्ति भी अपने आप को सकारात्मक प्रवृत्ति के

व्यक्ति में बदल सकता है। स्वयं तथा समाज के लिए अपने आपको उपयोगी बना सकता है। परंतु शर्त यह है कि वह अपनी वृत्तियों की सकारात्मक व्यक्तियों की तरह विवेक के अधीन रखे या विवेक को वृत्तियों के अधीन समर्पित कर दे।

आदिकवि वाल्मीकि 'रत्नाकर' दस्यू नाम से पूर्व में प्रसिद्ध थे, जो बाद में महर्षि के नाम से ख्यात एवं प्रख्यात हुए। इन्होंने अपनी अंतरात्मा की आवाज पर दस्यू का पेशा छोड़ दिया और अंततोगत्वा अपने आप को पूर्णरूपेण परिवर्तित कर इतिहास के पन्नों में अपनी अस्मिता स्थापित की, यह जगत् प्रसिद्ध है। सम्राट अशोक ने 99 भाइयों की हत्या कर राजगद्दी प्राप्त की थी। कलिंग युद्ध की विभीषिका का उन पर प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने सदा के लिए हिंसा का मार्ग छोड़कर अहिंसा का मार्ग (बाद्धधर्म) अपनाया। यह तथ्य रेखांकित करता है कि व्यक्ति चाहे तो अपने व्यक्तित्व एवं सोच को सकारात्मक दिशा दे सकता है। हमारे अँगुलीमाल की कहानी भी कुछ इसी प्रकार की है। व्यक्तित्व जिसमें अद्‌भुत क्षमता एवं आकर्षण होता है, उसमें अगर शारीरिक और आंतरिक गुणों के संतुलन से आकर्षण उत्पन्न हो जाये तो वह व्यक्ति मनोरंजन के क्षेत्र में विशेषकर फिल्मों के क्षेत्र में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है। शरीर की अच्छी संरचना लोगों में आकर्षण का भाव जगाती है। एक एथलाट खिलाड़ी, पहलवान की सफलता के लिए जरूरी है कि वह व्यक्तिगत एवं सामूहिक खल में खिलाड़िया क भातर हनर क साथ-साथ सुगांठत शरीर बनाने की प्रेरणा प्रदान करें। मजबूत शारीरिक संरचना का व्यक्ति ही एक सफल खिलाड़ी बन सकता है। शतरंज, कैरम आदि खेल के लिए शरीर का स्वस्थ होना अत्यंत आवश्यक है, परंतु शरीर का मजबूत होना आवश्यक नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्तित्व का पूर्ण अर्थ तो व्यक्ति में विद्यमान उसके आंतरिक गुण ही दिलाते हैं परंतु बहुत से ऐसे भी क्षेत्र हैं जहाँ मजबूत शारीरिक संरचना के माध्यम से आकर्षण उत्पन्न होता है, जो व्यक्तित्व के लिए आवश्यक होता है।

आज हमारा समाज दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक प्रतियोगितापूर्ण होता चला जा रहा है। लोगों के समक्ष अनगिनत चुनौतियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। चुंनौतियों का सामना करने के लिए साहस, धैर्य, समझदारी आदि गुणों का होना लाजिमी है। ऐसे गुण लोगों में अच्छी शिक्षा, अच्छे संस्कार, उचित प्रशिक्षण और सकारात्मक सोच विकसित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। किंतु आज जीवन की रफ्तार इतनी तीव्र हो गई है कि लोग उपभोग की संस्कृति अपनाने में व्यस्त हो गए हैं। ऐसे लोगों के पास स्वयं के अलावा दूसरे के लिए समय कहाँ है? यह बात वर्तमान में युवावर्ग में अधिक देखी जा रही है। इसका परिणाम यह है कि वह दिनानुदिन अकेलेपन का शिकार होते जा रहा है। वह पारिवारिक उपेक्षा और करियर के प्रति अधिक चिंतित एवं जागरुक होने के कारण बुरी संगतों का शिकार हो रहा है जैसे नशाखोरी एवं अवसाद का। युवाशक्ति किसी भी समाज एवं देश के लिए शक्ति होती है। संपूर्ण देश का भविष्य युवाशक्ति पर निर्भर करता है। अगर युवाशक्ति ही बुरी आदतों का शिकार हो जायेगा तो देश एवं समाज का भविष्य पतन की ओर अग्रसर हो जाएगा। यह सहजभाव से समझा जा सकता है कि गलाकाट प्रतियोगिता क कारण युवाओं के व्यक्तित्व में कुण्ठा का घर कर जाना, कैरियर के प्रति अधिक चिंतित रहना, माता-पिता एवं सगे संबंधियों के सपनों को पूर्ण करने में अत्यंत दबाव का अनुभव करना, युवाओं के भीतर अवसाद भर देगा या उम्मीद से कम हासिल करने के कारण उनमें नकारात्मक प्रवृत्ति घर कर जाएगी, जिसका परिणाम उनके तथा समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

आज इस बात की आवश्यकता है कि परिवार एवं समाज, अभिभावक एवं शिक्षक वर्ग परिस्थितियों का विश्लेषण गंभीरतापूर्ण ढंग से करें। वे अपने अनुभवों एवं दूरदर्शिता से युवाओं के भीतर जो कुण्ठा एवं अवसाद भर गए हैं, उन्हें दूर करने का अथक प्रयास करें। युवाओं के क्षमतानुरूप यह वर्ग अपेक्षाएँ रखें। कारण साफ है, क्योंकि अभिभावक और शिक्षक भलीभांति जानते हैं कि इन युवाओं के भीतर कौन से आंतरिक गुण विद्यमान हैं। अभिभावकों एवं शिक्षकों का कर्त्तव्य बनता है कि उनके गुणों को पहचानकर उनके विकास में अपना सहयोग प्रदान करें तथा उनके भीतर पनप रही विकृतियों को दूर करने का अथक प्रयास करें, तभी हमारे समाज में स्वस्थ एवं सकारात्मक सोच रखने वाले व्यक्तियों का जन्म होगा और एक अच्छे एवं पवित्र समाज का निर्माण होगा। आज समाज दिन-प्रतिदिन हिंसा का शिकार होता जा रहा है। कई प्रकार की बुराइयों से हमारा समाज वर्तमान में ग्रसित हो रहा है। इन बुराइयों से निकलकर ही हमारा समाज अच्छे व्यक्तित्व के लोगों की सृजनशीलता एवं रचनात्मक कार्य का लाभ उठा पाएगा, अन्यथा नहीं।

अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व इंसान का वह लिबास है, जो देखने से अधिक महसूस करने की चीज है। यह विकास अच्छे संस्कार के ताने-बाने से निर्मित होता है, जिसके प्रति लोग सदैव आकर्षित हो, उस लिबास की तरह नहीं जिसे धारण कर लोगों में आकर्षण तो पैदा होता है परंतु लिबास के पुराना होते ही शरीर का आकर्षण धूमिल होने लगता है। लिबास बदलकर व्यक्ति भले ही स्वयं को आकर्षण का केंद्र बना ले परंतु व्यक्ति का वह लिबास जो संस्कारों के ताने-बाने से निर्मित हुए हैं, जिसमें व्यक्ति की आंतरिक खूबियों का अद्‌भुत रूप अभिव्यक्त होता है, जो शरीर की अपेक्षा मन की खूबसूरती के प्रति लोगों का आकर्षण एवं रुचि कायम रखने में सफल होता है वही लिबास व्यक्तित्व को सही पहचान दिलाता है, जो सदा अपने व्यक्तित्व के प्रति लोगों को आकर्षित करता रहता है।

कहानी : 'स्मृति दंश'

○ डॉ. मंजु दूबे,
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,
ऑरियन्टल कॉलेज, पटना सिटी

किर्रऽ-किर्रऽ-किर्रऽ टेलीफोन की घंटी बज उठी। अम्मा पूजाघर में थी, बाबूजी कचहरी जा चुके थे। नौकर रामधन ने रिसीवर उठाया। फोन पर जो उसे समाचार मिला उससे वह अवाक् रह गया। एक क्षण उसे लगा कि कोई शरारत कर रहा है। अम्मा को यह समाचार कैसे सुनाये? पर सुनाना तो पड़ेगा ही, कलेजे पर पत्थर रखकर। आधे घंटे बाद पूजा का प्रसाद लिए अम्मा बाहर आई। रामधन को आवाज देती हुई रसोई घर की ओर बढ़ी, रामधन निर्विकार शून्य भाव लिए जड़वत बैठा रहा। उसे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। प्रसाद मुँह में डाल केवल एक ग्लास जल पीकर अम्मा की मेज की ओर पहुँची। बेतरतीब कुर्सियों को ठीक करती हुई फिर से रामधान को आवाज देती है, जाने कहाँ मर गया है आज वह? रात से मैंने कुछ खाया नहीं है। तबियत कुछ ढीली है यह रामधन को पता है फिर ऐसी चुप्पी क्यों उसने साध रखी है। सहसा उनकी दृष्टि टेलिफोन वाले मेज के नीचे पड़ी जहाँ रामधन कब से जड़वत बना बैठा था। अम्मा यह देख भयभीत हो जाती है वे रामधन के नजदीक पहुँचकर कुछ पूछना ही चाहती है कि वह फफक-फफक कर रो उठता है। रूंधे गले से वह मालकिन को बताता है कि उनकी लाडली गरिमा अब इस दुनिया में नहीं है। किसी पड़ोसी ने के टेलिफोन पर यह सूचना दी थी। कल रात स्टोव में आग लग जाने के कारण गिरमा झुलस कर मौत की नींद सो गई। पटना मेडिकल हॉस्पीटल में पोस्ट मार्टम भी हो चुका है। अम्मा के पूरे शरीर में झुनझुनी सी होने लगी। विस्मय से आँखें फटी की फटी रही। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था यह सब। परसों ही तो उन्होंने बड़ी राजी खुशी अपनी बिटिया को उसके घर भेजा था। अम्मा के मन में हजारों प्रश्न बिच्छु के डंक की तरह बेध ने लगे। इतनी अल्हड़ एवं असावधान कबसे हो गयी मेरी बेटी? बचपन से ही मेरी रसोई में वह हाथ बँटाती रही है। हमेशा चौकन्ने होकर काम करने की आदत उसकी अभी तक नहीं गई थी।

रामधन ने कनहरी में फोन लगा कर बाबूजी को जल्दी घर आने को कहा। रामधन के घबराये स्वर से आशंकित हो बाबूजी सारे काम छोड़ जल्दी ही घर आ गये। इस अप्रत्याशित घटना के लिए मानो बाबूजी तैयार बैठे थे। वे चुपचाप अम्मा को गाड़ी में बैठा कर अस्पताल पहुँचते ही अम्मा की ममता बिखल उठी। ढँके हुए गरिमा के पूरे तन को देखने का साहस वे बटोर न सकीं। केवल चेहरे भर को रितेश ने जबरन दिखा दिया। गरिमा का सुंदर मुखड़ा विजय दर्प से दमक रहा था, अम्मा ने यह साफ महसूस किया। रीतेश और उसकी माँ की भाव-भंगिमा को देखकर... बाबूजी और अम्मा को समझते देर न लगी कि रीतेश और उसकी माँ के आँसू घड़ीयाली हैं। क्रोध, अपमान और लाचारी के घूँट पीकर बाबूजी रह गए। बेचारी अम्मा अपनी कोख के अपमान से भीतर ही भीतर कराह उठी। अपनी प्यारी बिटिया के नाम पर पहले से रखी गई सुंदर सी साड़ी से गरिमा के तन को सजा कर अंतिम बिदा ली।

वापस लौटते समय उन्होंने गरिमा के घर से उसकी एकमात्र धरोहर स्मृति को अपने संग ले लिया। नन्हीं स्मृति भयभीत हिरणी सी नानी के अंक में जा छपी। गरिमा स्मृति के रूप में फिर से अम्मा के सामने जा उठीं। अड़ोस-पड़ज़ेस के एवं स्मृति के बयान से स्पष्ट हो चुका था कि गरिमा की मौत स्वाभाविक रूप से नहीं हुई है। रीतेश न घुला-घुला कर बड़ी बेरहमी से उसके जीवन का अंत कर दिया। घर जाकर अम्मा ने स्वयं को चारदीवारों में कैद कर लिया। गरिमा के शैशव काल से लेकर अब तक की सारी स्मृतियाँ सजग हो उठी। धीरे-धीरे अम्मा उन यादों में डूबती चली गई। वही उनके जीने का सहारा हो गया। अम्मा जिस किसी से कभी भी बात करती वह गरिमा के इर्द गिर्द ही होता। यदि एकाकी बैठी होती तो मधुर एवं कटु अनुभूतियों का ही चिंतन करती।

अपनी तीन बहनों में गरिमा आरंभ से ही सबसे अधिक चुलबुली, मेधावी थी। गजब की ग्राहिका शक्ति थी उसकी अम्मा को एक-एक बात याद आ रही है। एकबार जब वह किसी पार्टी में गरिमा को लेकर गई थी, तब वह मात्र नौ साल की थी। पार्टी में नृत्य का भी आयोजन था। घर आकर गरिमा ने बिल्कुल वैसे ही नृत्य की नकल जिस खूबी के साथ की, लगता था जैसे कि कोई सधे हुए कलाकार की छाया हो। सभी उसके गुण से अभिभूत हो उसे नृत्य सीखने के लिए बाध्य करने लगे और अंततः बाबूजी के सहयोग से उसने कथक की शिक्षा भी पूर्ण कर ली। एक ओर पटना विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के स्नातकोत्तर विभाग से उसने पिछले सारे कीर्तिमान तोड़ डाले तो दूसरी ओर

संगीत, नृत्य, नाटक इत्यादि कलात्मक रूचियों ने उसे पूरे शहर में चर्चित बना दिया। अम्मा का कलेजा फूला समाता / गरिमा की ख्याति सुन-सुन कर। ऐसी गुणवन्ती गरिमा के योग्य वर तलाशने में बाबूजी थकने लगे। तभी एक दिन सिन्हा साहब ने एक लड़के की सूचना दी। वह लंदन में इंजीनियर के पद पर कार्यरत था। अम्मा-बाबूजी को लड़का और परिवार पसंद आ गया और उन्होंने गरिमा को उससे ब्याह देने का फैसला भी कर लिया। लड़के ने एक वर्ष का समय मांगा। सारी बातें तय हो गयी। पर होनी तो कुछ और होनी थी, उसे कौन टाल सकता था भला। अम्मा की आँखों के आगे अतीत चलचित्र की तरह आने लगा। गरिमा की बातों में आ जाने के कारण कभी वह स्वयं को दोषी मानती तो कभी विधाता का विध ान समझ यही नियति मान लेती। उन्हें याद है किस तरह गरिमा नियति के हाथों कुचक्र का शिकार सरलता से होती चली गयी।

एक दिन जब ओझा अंकल के यहाँ से निमंत्रण आया तो अम्मा बाबूजी अपनी दो बेटियों गरिमा और परिना को लेकर वहाँ जा पहुँचे। बड़ी बहन अजिमा दीदी कलकत्ता में ब्याही गयी थी। उनका जीवन काफी सुखमय था। सागर भैया भाभी रीसर्च सेंटर, मद्रास के अणु विभाग में वैज्ञानिक शोध में लगे थे। उन्हें पारिवारिक उलझनों से मुक्त रखा गया था। छोटा भाई परेश पूना के नाट्य मंच से जुड़ने के कारण वहीं का होकर रह गया था। सारी जिम्मेदारियाँ अम्मा, बाबू जी ही उठा रहे थे। अपने बेटे-बेटियों को अच्छी शिक्षा देकर वे संतुष्ट थे। पर कौन जानता था ओझा अंकल के यहाँ का निमंत्रण उनके ारिवार में इतना बड़ा तूफान लायेगा। ओझा अंकल के यहाँ पूजा समाप्ति के बाद जब अम्मा, बाबूजी लौटने लगे तो ओझा अंकल ने कहा, वकील साहब मेरा शिष्य है, रास्ते में इसे छोड़ दीजिएगा। बाबूजी को भला इसमें क्या एतराज होता। उन्होंने सहर्ष उसे गाड़ी में बैठने के लिए आमंत्रित कर डाला। उन्हें क्या पता था कि उनका यह आमंत्रण उनकी प्यारी गरिमा की मृत्यु का आमंत्रण था। रीतेश ने बड़ी चालाकी से उनका घर देख लिया और किसी न किसी बहाने वह गरिमा को अपनी ओर आकर्षित करने लगा। धीरे-धीरे वह उस परिवार का सदस्य बन बैठा। इसका अहसास अम्मा, बाबूजी को तब हुआ जब गरिमा ने अम्मा के सामने रीतेश से शादी का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव सुनते ही अम्मा की ममतामयी आँखों से क्रोध बरसने लगा। अम्मा का यह रूप गरिमा ने कभी देखा ही नहीं था। सहमी हुई वह परीना के पास पहुँची। परीना उसकी सच्ची, सखी, बहन सबकुछ थी। परीना रीतेश के प्रति गरिमा के लगाव को एवं उसके जिद्दीपन से पूर्ण अवगत थी। गरिमा की दयनीयता देख उसने अम्मा से सिफारिश की थी। काफी समझाया था परिना ने। तब कहीं जाकर कुछ पिघली थी अम्मा। बात बाबूजी के कानों में पहुँची। दोनों ने मिलकर यह फैसला किया कि बेटी को फिर से एकबार समझाया जाय, शायद वह सही मार्ग का चयन कर सके। अम्मा ने समझाया, बेटी हम तुम्हारा ब्याह बहुत अच्छे लड़के से तय कर चुके हैं, तुम अच्छी तरह जानती हो। तुम्हारी मर्जी से ही यह तय हुआ था तुम इसे तोड़ना चाहो तो खुशी से तोड़ दो मुझे कोई आपत्ति नहीं। किंतु, एक बार तुम हृदय से सोचकर देखो कि क्या रीतेश तुम्हारे योग्य है? किसी तरह उसने बी.एम.सी. किया है, उम्र में भी वह तुमसे कई साल छोटा है, फिर वह हमारी जाति का भी नहीं है। बाबू जी ने भी समझाया रीतेश का कोई कैरियर नहीं है बेटे। ना ही वह किसी नौकरी में है। गरिमा तुम्हारा वैवाहिक जीवन सफल रहेगा या नहीं यह सोच मेरा मन आशंकित हो रहा है। मुझे विश्वास है बेटी कि आगे जाकर रीतेश के मन में कुंठा की भावना जन्म लेगी।

किंतु, गरिमा पर अम्मा बाबूजी की बातों का वही असर हुआ जो चिकने घड़े पर पानी डालने से होता है। गरिमा को अपनी बुद्धि का पूरा भरोसा था। उसने अम्मा को विश्वास दिलाया कि वह रीतेश को अपने अनुकूल भविष्य में ढाल लेगी। बड़े प्यार से गरिमा ने अम्मा की गोद में सिर रखकर कहा, रीतेश की आँखों में कुछ कर डालने की जो चमक है उसे तुम अनदेखा क्यों कर देती हो अम्मा, रही जाति पांति की बात तो वह बहुत पुरानी हो चुकी है। अब उम्र का विभेद भी कोई मायने नहीं रखता क्योंकि कई ऐसे विवाह तुम्हारे जमाने भी हुए हैं जिसमें लड़कियाँ बड़ी रही हैं और वह विवाह सफल रहा है। सचमुच अम्मा रीतेश जब भी आता है मैं उसकी आँखों के सम्मोहन में पूर्णत: खो जाती हूँ। मेरी प्यारी अम्मा मान भी जाओ, मैं रीतेश को ही अपना जीवन साथी बनाऊँगी। जब अपनी ही संतान बड़ी-बड़ी बातें कहने लगे तो उसके साथ समझौता करना ही पड़ता है। बेटी की जिद्द के आगे अम्मा हार गयी। बड़े-बड़े आत्मविश्वासी भी संतान के आगे झुक जाते हैं। फिर अम्मा तो बेचारी करुणा और ममता की मूर्त्ति ठहरी। बड़ी धूम-धाम से गरिमा और रितेश वैवाहिक बंधन में बंध गए। अम्मा ने अपने मन के सारे मैल को धो डाला और पूरे मनोयोग से बेटी का ब्याह रचाया। पर गरिमा को क्या पता था कि वह वैवाहिक बंधन रितेश के प्यार का नहीं वरन् स्वार्थ का बंधन होगा।

आरंभिक कुछ महीने गरिमा के बड़े प्यार और सम्मानजक बीते। स्मृति का जन्म उसके प्यार का प्रतिफल था। गरिमा अब तक कॉलेज प्राध्यापिका बन चुकी

थी। सामाजिक प्रतिष्ठा उसके कदमों को चूम रही थी। इधर रीतेश के रीते हुए कुंठित मन ने उसे यातना देने के लिए तरह-तरह की योजनाएँ बनाना आरंभ कर दिया था। गरिमा इन सबसे अनभिज्ञ रीतेश पर अपना प्यार लुटाती रही। एक दिन वह कॉलेज से कुछ कार्यवश शीघ्र ही घर चली आई। पंद्रह मिनट तक दरवाजा पीटने के बाद रीतेश ने दरवाजा खोला उसके पीछे-पीछे एक अनजान महिला भी निकल कर बाहर चली गई। आक्रोश से जलती हुई गरिमा घर के अंदर पहुँची तो देखती है कि उसके कमरे में कुछ खाने की चीजें एक खाली बोतल-बिखरे पड़े हैं और नन्हीं स्मृति रो रही है। गरिमा का आहत मन सब कुछ सह गया इस विश्वास पर कि शायद क्षमा करने से रीतेश के जीवन में सुधार आ जाय। पर रीतेश ने उसकी सहनशीलता और क्षमा शीलता को गरिमा की कमजोरी माना और परिणामत: रीतेश की हरकतें इतनी बढ़ने लगी कि गरिमा की आँखों के आगे ही सब कुछ होने लगा। जब भी रीतेश को समझाने का प्रयत्न करती वह शारीरिक यातनाओं का शिकार होती। किंतु, उसकी अन्तर्व्यथा को पढ़ पाना बहुत कठिन था। अम्मा बाबूजी के पास अब भी वह उसी स्वाभिमान के साथ जाती। अपनी वेदना को वह अम्मा के सामने कभी प्रकट नहीं होने देती। पर रीतेश के काले कारनामों की दुर्गंध अम्मा के आसपास फैलने लगी। नन्हीं स्मृति की आँखें अपने पिता के चिट्ठों को खोल देने के लिए अम्मा के आगे कटिबद्ध थी। उसकी मासूमियत पिता के भय से आहत हो चुकी थी। इसे समझते अम्मा को देर न लगी किंतु, गरिमा गरिमा थी। वह स्वाभिमानी लड़की अम्मा के आगे अपने पति के दोष को कभी भी सिद्ध नहीं होने देती। परंतु इसके विपरीत हर बार जब भी वह एक नये विश्वास के साथ रीतेश को सुधारने का प्रयास करती पर उसका विश्वास एक ही झटके में टूट कर चूर-चूर हो जाता और तब वह बिल्कुल निस्सहाय हो जाती। फिर अम्मा के यहाँ तीन चार दिन गुमसुम बने रहना यही उसकी नियति हो चुकी थी।

इधर कुछ महीनों से गरिमा काफी खुश दिखलाई दे रही थी। अम्मा को इस परिवर्तन से थोड़ी राहत भी मिली, थोड़ा आश्चर्य भी हुआ। अबकी बार तो अम्मा ने काफी कुछ देकर बड़े प्यार से उसे रीतेश के पास भेजा, रीतेश ही उसे लेने आया था।

अम्मा के सामने उसने गरिमा के प्रति जो समर्पित भाव दिखाए थे उससे अम्मा को सहसा विश्वास नहीं हो पा रहा था कि रीतेश इतना घृणित कार्य करेगा। अम्मा यह याद कर सिहर उठती है कि मेरी फूल सी कोमल गरिमा को कैसे लोहे की सलाखों को गर्म करके जलाया होगा। रीतेश की क्रूरता की पराकाष्ठा तो तब हो गयी जब गरिमा के हाथ-पांव को बांध कर उसने इतनी बेरहमी से पीटा कि वह चिर निद्रा में सदा के लिए विलीन हो गयी। अम्मा को अब समझ में आ रहा है कि गरिमा के प्रति रितेश का अंतिम दर्शाया गया प्रेम उस दिये की लौ की तरह था, जो बुझने के पूर्व बहुततेज प्रज्ज्वलित हो उठता है। अम्मा यह सब कुछ भूलने के लिए कभी तैयार नहीं है। आँखें अहरह आँसुओं के सैलाब में डूब जाती हैं बाबूजी तक के आने और जाने का ध्यान भी अब उन्हें नहीं रहता। अम्मा को इससे उबारने के लिए बाबूजी ने क्या कुछ नहीं किया। रीतेश पर मुकदमा चलाया उन्होंने पर इतने वर्षों के वकालत का अनुभव बाबूजी के काम नहीं आया। सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी। रीतेश दुनिया के सामने सीना ताने फिर से विवाह रचाने की तैयारी में लग गया और अम्मा गरिमा के स्मृति-दंश से तिल-तिल मरती रहीं। उससे भला कभी उबर पायेंगी वे।

पांच कविताएं

1. जुगुप्सित जीवन

-डॉ. मणिकान्त ठाकुर

तुम सिर्फ हंस सकते हो
कहकहे लगा सकते हो
तुम्हें क्या मालूम?
सत्य की चोट कितनी
गहरी होती है
या उस हंसी में तुम्हारी
कौन-सी ग्रंथि छिपी होती है
तुम नित नये फैशन कर सकते हो
नये-नये फ्रेम की ऐनक
लगा सकते हो
तुम्हें क्या मालूम?
ऐनक के तले की दृष्टि कितनी
धुंधली होती है
तुम उपहास कर सकते हो
तिरस्कार कर सकते हो
तुम्हें क्या मालूम
जुगुप्सित जीवन
कितना भयानक!
कितना अभिशप्त! होता है।

2. कौवे की जात

कौवे की जात! तुम
सदा कौवे ही रह गए
काश! बोली तुम्हारी मीठी होती
तो, गणना तुम्हारी
कोयलों में होती
कर्कश आवाजें तुम्हारी
क्षुद्र मनुष्य की भांति
चुनौतीपूर्ण होती हैं।
चंचल आंखें तुम्हारी
दुष्ट शत्रु की भांति
धोखा देने को बेताब रहती हैं
तुम्हें क्या मालूम
मनुष्यत्व क्या है?
जीवन सत्य क्या है?
न तुम जानने की उसे कभी

चेष्टा ही करते
शायद, इसी लिए
रोटी दूसरे की झपट लेने में
आगे रहते हो
तुम्हें क्या मालूम?
झपटे इस रोटी के निर्माण में
कितनों का खून-पसीना एक हुआ
कितनों ने आत्माहुति दी
अपनी आबरु! अपनी आत्मा!

3. एक नंगी लाश

सड़क के चौराहे पर
पड़ी है एक नंगी लाश,
भिनभिना रहा है
मक्खियों का झुंड
छाया है चारों ओर
एक विषम वातावरण

उसी क्षण एक पंडित आये
छापा तिलक लगाये
लाश देखते ही
उबल पड़े रामधुन लगाए
राम-राम! यह घोर कलयुग है,
यह कैसा अन्याय है?
कलयुग की यही सच्चाई है।

तत्क्षण एक भिक्षुक आया
कांपते ठंड में बुरी तरह से
नजर लाश पर डाली
फटी मैली चादर ओढ़ाई
डबडबी नम आंखों से दी
लावारिस लाश को अपनी श्रद्धांजलि

उसी क्षण एक नेता आया वहां पर
भीड़ चीर फौलाद बनकर
कहने लगा - है यहां लोकतंत्र कहां पर?
यह है लोकतंत्र की हत्या!
यह है मानव मूल्यों की हत्या
कहते ही हुआ स्टेशन वैगन में सवार
निकल लिया पतली गली।

सोचता हूं आम आदमी
जिंदा लाश नहीं तो और क्या है!

4. स्थूल शरीर

बहुत सी नावें
बहुत से तीर
इधर से आए
उधर गुजर गए।
एक आह निकली
टीस भरे मन से
मेरा हाल एक परकटे परिंदे-सा था
उन्मुक्त बहते सागर की धारा में
बिना पतवार का नाविक
अथाह सागर में हिलोरें लेती
जलधारा में घिरा
प्रतीत हो रहा था
मानो, बहती जलधारा के साथ
कोई आत्मा
बहती चली जा रही है
और, मेरा स्थूल शरीर
प्राणहीन! पार्थिव! पड़ा है!

5. सूखे पत्ते

आज हम
सूखे पत्ते बटोर रहे हैं
कल यही सूखे पते
इस आम के पेड़ की
शोभा थे
और, कल यही सूखे पत्ते
नहीं रहेंगे
तब्दील हो जाएंगे
राख में! मिट्टी में!
और, एक दिन हम सब
तब्दील हो जाएंगे
धूल में! मिट्टी में!

- एम.एम.एच. कॉलेज,
गाजियाबाद, उ.प्र.

○

कुछ मुक्तक

- डॉ. देवेन्द्र आर्य
वाणी सदन, बी-98, सूर्यनगर,
ग़ाज़ियाबाद-201011 (उ.प्र.),
फोन नं.9810277622

लिख रहा मौसम शहीदों की कहानी।
दीप्ति पथ में छोड़ पैरों की निशानी।
गा रहा इतिहास अब भी शान से तन-
देश पर बलिदान है जिनकी जवानी।

सरहदों पर जो खड़े हैं तान सीना।
मौत से लड़कर कि अपना मान छीना।
एक जीवन में जिए वे ज़िंदगी सौ-
धन्य है उनकी जवानी, धन्य जीना।

नाग फणियों पर चलो चंदन उगाएँ
और चंदन गंध से नंदन सजाएँ
शब्द के पिन तो जमाने ने चुभोए-
नेह के संबंध को वंदन बनाएँ।

किन लकीरों से कहाँ तकदीर बाँधें
कर्मशर से या कहो तद्बीर साधें
बैठने भर से मसीहा क्या मिलेगा?
लक्ष्य है तो लक्ष्य को तसवीर साधें।

शत्रुता क्या नेह के मंडप सजाओ
तोड़कर पाबंदियों को घर बनाओ
एक ही मनुहार काफी है हृदय की
रूठ कर बिछुड़े हुए जन को मनाओ।

रात दिन की जुस्तजू है यह सवेरा
खूबसूरत गंध, मन का यह चितेरा
मुदद्तों से भोर का अनुबंध है जब
क्या करेगा घेर मुझको यह अंधेरा?

कायरों सा हार जो आँसू बहाते
आदमी का जन्म मिट्टी में मिलाते
आपदा को मोड़ कर जग में जिए जो
शिव सरीखा नाम वे जग में कमाते।

ज़िंदगी कितनी हंसी है, क्या बताएँ?
व्यर्थ में रो-रो इसे हम क्यों गँवाएँ?
संसार की हर चीज़ कमतर ज़िंदगी से
प्यार के दो बोल से इसको सजाएँ।

आग में तप स्वर्ण कुन्दन सा बनेगा
चोट सहकर अश्म वंदन सा बनेगा
तीक्ष्ण हल की नोंक सहता है वही तो
खेत पतझर में कि नंदन वन बनेगा।

आपदा तो मौत की साज़िश रचेगी
रूप धर हर मोड़ पर बैठी मिलेगी
मगर जब तक डोर उसके हाथ में है
जिंदगी सौ दंश में खिलती रहेगी।

ज़िंदगी भर दर्द का सागर पिया है
इस तरह से चार पल का सुख जिया है
चाहता तो हूं कि कोई हमसफ़र हो
इस सफ़र में जो जिया यूँ ही जिया है।

हो सके तो प्यार के दो बोल बोलो
विष भरे वातावरण में शहद घोलो
हर जगह बैठी यहाँ रुसवाइयाँ हैं
मुद्दतों से बंद हैं वो द्वार खोलो।

छहर-छहर उछली है नदिया की धार
देख रही नेह से कि मेघा की धार
लगता है धरती की किस्मत जागी है
स्वाति बूँद आई है सीपी के द्वार।।

हर जगह आतंक का दर्द फैला है
अँधेरा है, आग है, धुआँ फैला है
हाथ बढ़ा सूरज को हम थाम तो लें
स्वार्थ में डूबा मौसम ही मैला है।

पार के लिए नाविक सी कामना हो
गीत के लिए भावों की साधना हो
सृजन सार्थक हो, यह जरूरी है मगर
लक्ष्य के साथ जनहित की भावना हो।

मन के धैर्य को कभी चुकने न देना
सौ आपद् हों, तन को झुकने न देना
पाँव यदि थकने लगें लक्ष्य से पहले
हिम्मत के इस रथ को रुकने न देना।

रुकने वालों को मंजिल नहीं मिलती
हिम्मत बिना जग में खुशबू नहीं मिलती
झुक तो जाओ कहीं भी मगर सोच लो
झुकने पर कभी ज़िंदगी नहीं मिलती।

रगड़ो तो चंदन भी आग होता है
मिलने पर हर मौसम फाग होता है
व्यवस्था जब जुल्म करती है बेवजह
क्रोधित स्वरों में प्रलय भाव होता है

○

सामयिक दोहे

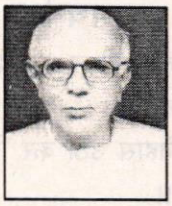

- पं. जनार्दन प्रसाद द्विवेदी,
प्रज्ञा निकेतन, जय प्रकाश नगर,
पटना-1, फोन-0612-2510109

शोर शराबा बहुत है, इस मेले में आज;
अलग-अलग सब आदमी, अलग अलग है साज।

धुंध-भरा परिवेश है, खतरे में अस्तित्व,
भीड़-भरे बाज़ार में, खोया है व्यक्तित्व।

अधुनात के दौर में, परिवर्तित आचार;
घर बाहर में एक-सा, कुत्सित है व्यवहार।

जीवन शैली बदल रही, नया ले रही रूप;
पहले-सा अब कुछ नहीं, सबका नग्न स्वरूप।

नेता जी को चाहिए, किसी तरह से वोट;
आग लगे जनता मरे, सहे बाढ़ की चोट।

वोटों की है राजनीति, नैतिकता का अंत;
नहीं दिखाई दे रहा है, गाँधी जी-सा संत।

जे.पी. - गाँधी-शिष्य ही, पैदा करते भेद;
अपनी रोटी सेंकते, नहीं किसी को खेद।

दल-बदलू की बढ़ रही, जनसंख्या हर ओर;
संसद भी लाचार है, बाहुबली का जोर।

फिर चुनाव में हो रहे, लड़ने को तैयार;
ज्योतिषियों से पूछते, कैसा है आसार।

बेमानी है लग रही, नैतिकता की बात;
जहाँ कहीं भी देखिए, ऐसी ही हालात।

सीमाएँ सब टूटतीं, मर्यादाएँ भंग;
गंगा गंदी हो रही, दूषित नालों संग।

कहने को मधुमास है, पर पतझर का राज;
कोयल कुचली जा रही, कौआ पहने ताज।

○

गंगा

- डॉ. मोईनुद्दीन 'शाहीन'
सुलेमानी मदरसा के पास
मोहल्ला व्यापारियान, बीकानेर
334001-राजस्थान

नीर है तेरा अमृत गंगा,
करे सभी को पोषित गंगा।
नाम पे तेरा करता हूँ मैं,
तन-मन अपना अर्पित गंगा।
तेरे भक्तों ने कर डाला
क्यूँकर तुझको दूषित गंगा।
देख के तेरी चंचल धारा
होते हैं सब हर्षित गंगा।
मुझ पर जो विश्वास है तुझको
ना होगा वो खंडित गंगा।
हर भारतवासी के दिल पर नाम है
तेरा टंकित गंगा।
तेरे तट पर आने वाला
होता है आनंदित गंगा।
खेती-बाड़ी, जीव, पशु,
सब हैं तुझ पर आधारित गंगा।
बंजर धरती को भी तूने
कर डाला है सिंचित गंगा।
तेरे बच्चे ही करते हैं
रोज़ तुझे प्रदूषित गंगा।
तुलसीदास ने तट पर तेरे
किया है क्या-क्या सृजित गंगा।
तरह-तरह के भेद छुपाकर रहती है
तू चिंतित गंगा।

तेरा पानी, पीने वाला
बनता है मर्यादित गंगा।
तेरी लहरें, तेरी मौजें
करें सभी को मोहित गंगा।
तेरी शीतलता लोगों को
करती है लालायित गंगा।
कैसे-कैसे संकट आए।
फिर भी है प्रतिष्ठित गंगा।
दया, करुणा, त्याग इत्यादि
सब है तुझमें मिश्रित गंगा।
अपने बेटों पर तू हरगिज
होती नहीं क्रोधित गंगा।
धरती के चप्पे-चप्पे को
तूने किया सुशोभित गंगा।
छोड़ के तुझको जाने वाला रहे
हमेशा कल्पित गंगा।
सारी दुनिया की नदियों में
नाम हो या पंडित गंगा।
सब के सब शैदाई तेरे
मुल्ला हो या पंडित गंगा।
तेरे दम पर जीने वाले
क्यूँ हो गए आतंकित गंगा?
तेरी भक्ति करने वाला
हो नहीं सकता है कुण्ठित गंगा।
सबके दिल में श्रद्धा तेरी
कोई नहीं है शंकित गंगा।
गौर करो इस पर भी 'शाहीं'
क्यूँ होती है दूषित गंगा।

○

युगधर्म

व्यष्टि के लिए जीवन खो देना है
बहुत बड़ी नादानी।
देखें हम इतिहास उठा कर मिलेगी
कई कहानी।।
स्वार्थ को परमार्थ में, कर दे विसर्जित।
है निरर्थक सोचना, क्या किया है अर्जित।।
उभय पक्ष सध जाएँ स्वत:,
है यह ईश्वर का वादा।
कुछ तो कर विश्वास ईश पर,
वह देगा निश्चित ज्यादा।।
मांग समय की पूरी करना,
श्रद्धावानों का कर्म है।
रीति-नीति है यही धर्म की,
अध्यात्म का सच्चा मर्म है।
मांग समय की सीधी सादी,
समष्टि की हो साधना।
निभ जाएगी स्वत: ही इससे,
परमेश्वर की आराधना।।
एक पंथ दो काज हैं,
सोच अरे नादान।
सच्ची राह पकड़ ले मानव,
सब देख रहे भगवान।।
क्षुद्र सोच से बन जाता है,
मानव पशु समान।
करता दिखावा ईश प्रेम का,
गाता स्वयं के ही गुणगान।।
ज्ञान नहीं अज्ञान है ये,
युग-धर्म नहीं पहचान सके।
एक नहीं कोटि कोटि,
व्यष्टि में पले बढ़े और थके।।
सोच बदल लो तनिक ए भाई,
गर चाहो कल्याण।
शिक्षा दे रहे युगों युगों से,
हमस ब को वेद-पुराण।।

– मुरारी पंचलंगिया

त्रिमूर्ति ज्वेलर्स

बाईपास रोड, बोकारो (झारखंड)

दूरभाष : 65765, फैक्स : 65123

परीक्षा प्रार्थनीय

–सुरेश एवं राजीव

समकालीन कहानियाँ और नारी-मुक्ति संघर्ष

○ डॉ. मणिकांत ठाकुर
एमएमएच कॉलेज, गाजियाबाद, उ.प्र.

''महिलाओं के उत्पीड़न का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की उत्पीड़न और असमानता पर आधारित सामाजिक संरचना के उद्‌भव का इतिहास।''
(जॉन स्टुअर्ट मिल - 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमन')।

समकालीन कथा-साहित्य के संदर्भ में नारी-मुक्ति-संघर्ष की बात करें तो इसकी शुरूआत भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति की सजगता, जीवन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण एवं रचनाकार के रूप में महिलाओं के आगे आने के साथ ही हो जाती है।

नारी का महत्त्व अक्षुण्ण है। सदियों से पुरुष ने अपने वर्चस्व की स्थापना को दृष्टि में रखकर सामाजिक नियम बनाये। शील, चरित्र, नैतिकता आदि का सारा भार स्त्री पर डाल दिया। ये नैतिक नियम, स्त्री को गुलाम बनाकर रखने की मानसिकता से बनाये गये। नियमों के ये बंधन इतने कठोर थे कि नारी आत्मोद्धार की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। पुरुष निरंकुश और नारी उसकी शोषिता बनकर रह गयी। 1918 में बम्बई में भगिनी समाज द्वारा आयोजित भाषण में महात्मा गाँधी ने कहा था कि - "Legislation has been mostly the hand work of man, and man has not always be fair and discriminate in performing the self-appointed task"

''कानून अधिकांश रूप में पुरुषों के द्वारा बनाये गये और पुरुष ने अपने ऊपर यह जो काम ले लिया उसमें वह हर समय बुद्धिमत्ता तथा न्याय से काम न ले सका।''[1]

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कहा था ''जिस जाति की सभ्यता जितनी पुरानी होती है उसकी मानसिक दासता के बन्धन भी उतने ही अधिक होते हैं।''[2]

भारतीय पौराणिक ग्रंथों आदि में नारी को ऊँचा स्थान देकर उसे श्रद्धा का पात्र बनाकर उसे देवी का दर्जा देने के पीछे पुरुषवादी सोच ही था जबकि व्यावहारिक धरातल पर उसे (नारी को) उपेक्षित ही रखा गया। एक ओर 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' कहा गया तो दूसरी ओर उसे कौमार्य में पिता के अधीन, यौवन में पति के व वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन कहकर यह उक्ति जोड़ दी गयी - 'न नारी स्वतंत्र्यं अर्हति'। अर्थात् जीवनभर नारी का किसी-न-किसी के अधीन रहना उसकी नियति है। गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन यहाँ बिल्कुल सटीक बैठता है -

''कत विधि सृजि नारी जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।''

परंतु बीसवीं सदी के दस्तक देते ही जैसे ही शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा तो सामाजिक-सांस्कृतिक व राजनीतिक जागृति ने समाज के परम्परागत परिवेश में खलबली मचा दी। समाज पर इसका गहरा असर पड़ना लाज़िमी था। फिर नारी इससे कैसे अछूती रह सकती थी? उसके अंदर भी नयी जागृति, नयी सोच व नयी स्फूर्ति का संचार हुआ। वह अपने सारे बन्धनों को तोड़ नये क्षितिज की ओर निकल पड़ी। अब नारी को पुरुष का गुलाम बनकर रहना, उसकी अंकशायिनी बनकर रहना अथवा उसका भोग-विलास की वस्तु (commodity) के रूप में इस्तेमाल किया जाना कतई मंजूर नहीं था। उसके व्यक्तित्व को जैसे विशिष्टता मिल गयी थी। अतीत में अपनी अस्मिता के कुचले जाने की प्रतिक्रिया में वह विद्रोहिणी बन गयी थी। आज परिवर्त्तन के साथ-साथ उसका बहुआयामी व्यक्तित्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कंधे-से-कंधा मिलाकर चलने के लिए दृढ़संकल्पित है। मनोविज्ञान एवं जैवविज्ञान भी नारी के व्यक्तित्व को नयी दृष्टि से परिभाषित करते हैं। नारी पुरुष से किसी तरह कम नहीं। उसमें अद्‌भुत शक्ति है। उसका व्यक्तित्व पुरुष की तरह ही श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। स्त्री एवं पुरुष की समानता को स्पष्ट करते हुए गाँधी जी ने कहा था - ''स्त्री में पुरुष के बराबर ही मानसिक गुण हैं और उसे पुरुष के सारे कामों में खूब ब्यौरे में हिस्सा लेने का अधिकार है। उसे भी उतनी ही स्वतंत्रता भोगने का अधिकार है जितना पुरुष को है। पुरुष को अपने कार्य-क्षेत्र में जिस प्रकार श्रेष्ठता प्राप्त है, उसी प्रकार स्त्री को भी अपने कार्य क्षेत्र में श्रेष्ठता होनी चाहिए। यह परिस्थिति लिखने-पढ़ने की अपेक्षा न करते हुए स्वाभाविक रूप से चालू होनी चाहिए। अत्यंत दूषित रीति-रिवाजों की बदौलत बिल्कुल मूढ़ तथा निकम्मे पुरुष को स्त्रियों के मुकाबले श्रेष्ठता प्राप्त है, ऐसी श्रेष्ठता जिस पर उसे कोई हक़ नहीं, और जो उसे नहीं मिलनी चाहिए।''[3]

यह कहना गलत नहीं होगा कि 'नारी-मुक्ति-संघर्ष' बीसवीं सदी का सबसे बड़ा सत्य है। आज जीवन के सभी क्षेत्रों-सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक साथ ही साहित्य एवं कला इत्यादि में नारी अपने तेवर दिखा चुकी है। खासकर समकालीन कथा-साहित्य में नारी को अधिक महत्त्व दिया गया। वे उपन्यास व कहानियाँ अधिक चर्चित हुईं, जिनमें नारी के उत्पीड़न या उसकी बोल्डनेस को दर्शाया गया। यह विषय महिला रचनाकार के लिए तो और अधिक स्वाभाविक बन पड़ा।

समकालीन कथा साहित्य में बोल्डनेस की शुरूआत इस्मत-चुगताई ने की। वे कला के स्तर पर तो कोई खास प्रयोग नहीं कर पायीं, किंतु उन्होंने जीवन को धर्म, रीति-रिवाज, नैतिकता, मर्यादा और परंपरा से अलग हटकर समझने की कोशिश की। उन्होंने स्त्री-जीवन की

विडंबनाओं को शिद्दत से अभिव्यक्त किया और यौन-शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद की। स्त्री को पुरुष के बराबर हक़ पाने के लिए उत्प्रेरित किया। उनकी 'लिहाफ' कहानी के लिए तो मुकदमेबाजी तक हुई। हिंदी कथा-साहित्य में बोल्डनेस की शुरूआत कृष्णा सोबती की कहानियों से मानी जा सकती है। अन्य समकालीन कहानीकारों की कहानियां जैसे - कृष्णा सोबती की 'एक लड़की', मृदुला गर्ग की 'वह मैं ही थी', चित्र मुद्गल की 'प्रेतयोनि' प्रतिमा वर्मा की 'उसकी हँसी', मृणाल पाण्डे की 'उमेश जी', नासिरा शर्मा की 'संगसार', मैत्रेयी पुष्पा की 'पगला गयी है भागो', जया रावत की 'भागवंती कहाँ जाओगी', कमल कुमार की 'मर्सीकिलिंग', राजी सेठ की 'दूसरे देश काल में', मंजुल भगत की 'दूत' एवं मन्नु भंडारी की 'सजा' तथा 'क्षय' कहानी इत्यादि में चित्रित स्त्रियाँ अपनी प्रकृति में विशिष्ट हैं। साहित्यिक दृष्टि से उनकी विशिष्टता यह है कि वे स्त्री की चिर प्रचलित छवि को तोड़ती हुई समाज की सड़ी-गली मान्यताओं का विरोध कर स्वावलम्बन भरा जीवन जीती हैं और समाज के ठेकेदारों को ठेंगा दिखाकर उनके नियमों के विरुद्ध अपने मार्ग प्रशस्त करती हैं।

'बहुस्यामि' कहानी में लवलीन ने अधिक सार्थक और सशक्त ढंग से नारी स्वतंत्रता और नारी-अधिकार का प्रश्न उठाया है। अर्चना वर्मा की कहानी 'जोकर' स्त्री उत्पीड़न की जबर्दस्त खिलाफत करती है। नासिरा शर्मा 'दूसरा कबूतर' में नारी चेतना और नारी अधिकार की जागरुकता को मुस्लिम परिवार की कुरीतियों व विसंगतियों के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं।

बाँग्ला की सुप्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी ने 'दलित-लेखन' को ही अपनी लेखनी का केंद्र-बिंदु बनाया। 'छुक्-छुक, छुक्-छुक् आ रेलगाड़ी' कहानी में उन्होंने आदिवासी कोल्हाटी समाज में होनेवाले स्त्री-शोषण (यह मान्यता कि पहली बेटी बिकाऊ है) को कथ्य बनाया है। रूपमती की बेटी को बार-बार नीलाम किया जाता है। उसके रूप-यौवन को भुनाकर ही माँ-बाप अपने पूरे परिवार की गुजर-बसर करते हैं। परंतु, अब उस समाज में भी स्त्री-चेतना जागृत हो गयी है। छब्बू से मंदा और मंदा से हीरामन बनी युवती, तीसरी बार नीलाम होने को कतई तैयार नहीं होती। चाबुक लेकर अम्मी, बप्पा, भाई, नरसी (कोल्हाटी समाज का पंडित) और ग्राहक अंकोरजी सभी को लहूलुहान कर देती है। अपने बच्चों को स्कूल में पढ़ाती है और खुद पढ़ने-लिखने लगती है इस प्रतिज्ञा के साथ कि एक दिन वह अपनी आत्मकथा (व्यथा) जरूर लिखेगी ताकि मंदा व हीरामन कोल्हाटिन के 'मन की पीर' को दुनिया के सामने ला सके।

वास्तविकता तो यह है कि सदियों से शोषित स्त्री आज भी उत्पीड़ित है, शोषित है। फर्क सिर्फ इतना है कि स्त्रियाँ पहले यौन-शोषण का विरोध करती थीं अब उपभोक्ता संस्कृति अर्थात् भोगवाद के शिकंजे में दबती अनैतिक संबंध खुद स्वीकार करने लगी हैं। अखिलेश की कहानी 'जलडमरूमध्य' की पुत्रवधू अपने बॉस के साथ देह-संबंध स्थापित करने में तनिक भी हिचकती नहीं और न ही वह अपराध -बोध से ग्रस्त होती है। उसका पति इस रिश्ते को जानते हुए भी सहज जीवन जीता है।

मतलब साफ है कि उत्तर-आधुनिकता के इस दौर में समाज अपने पुराने मूल्यों को खो रहा है। यौनशुचिता की अवधारणा गलत साबित हो रही है। परिवार, विवाह की संस्था आज भी मजबूत स्थिति में है लेकिन, विवाहेत्तर संबंध भी बगैर अपराध-बोध के हो रहे हैं।

दूधनाथ सिंह की कहानी 'नमो अंधकारम्' की समाजकली नौकरी पाने के लिए मंत्री की अंकशायिनी होने को आज का युगधर्म बताती है। बलजीत सिंह की 'आग', नवनीत मिश्र की 'चश्मा', लवलीन की 'चक्रवात', कृष्ण बिहारी मिश्र की 'दो औरतें', प्रियंवद की 'नदी होती लड़की' और राजेंद्र यादव की 'हासिल' कहानियाँ वस्तुत: सेक्स कुंठाओं पर आधारित हैं।

हमारा मंतव्य यह है कि यथार्थ के नाम पर साहित्य को कुत्सित मार्ग पर जाने से रोकना और भारतीय संस्कृति व साहित्य की गरिमा को बनाये रखना आज के परिप्रेक्ष्य में कथाकारों का और अधिक दायित्व बनता है। सैटेलाइट, भारीभरकम प्रचारतंत्र आदि द्वारा टेलीविजन के छोटे पर्दे पर अनवरत प्रदर्शित यौन उत्तेजनावाली सामग्री को अपनी रचनाओं में भोंडी व भदेस भरी अभिव्यक्ति देने की एक लहर सी इधर उठी दिखती है। साहित्य में समलैंगिक यौनाचार को तर्कसम्मत और नैसर्गिक ठहरा कर उसे कहानियों, उपन्यासों में ढालना और फिर उसे कला, यथार्थ और सच्चाई का नाम देकर सस्ती लोकप्रियता पाना, चर्चा में आना और फिर उसे 'बोल्ड रचना' कहना फैशन-सा हो गया है। इससे युवा व किशोर जो कल के भविष्य हैं, में अनाचार फैलेगा वे कुत्सित मार्ग पर चलने को फैशन मान बैठेंगे जो सामाजिक दृष्टि से किसी भी तरह स्वस्थ मानसिकता का परिचायक नहीं है। वस्तुत: रचना तो वही महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है जो समाज सापेक्ष हो या जिसका वास्ता सामाजिक सरोकार से हो और जो नैतिक मूल्यों के साथ यथार्थबोध पर आधारित हो। यथार्थवाद का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिए कि वह प्रकृतवाद (पोर्नोग्राफी) को तरजीह दे।

संदर्भ :-

1. जॉन स्टुअर्ट मिल - 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमन'

2. श्रीमती माया गुप्त, बी.ए. - बापू और नारी, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल, पटना, पृ.29।

3. पं. राहुल सांकृत्यायन-'दिमागी गुलामी : उपन्यासकार भगवती चरण वर्मा', पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ.72

4. श्रीमती माया गुप्ता, बी.ए. - बापू और नारी, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल, पटना, पृ.39

नई कहानी' के सशक्त हस्ताक्षर - कमलेश्वर

○ डॉ. महेश चंद्र शर्मा

कमलेश्वर स्वतंत्रतापरवर्ती युग के एक यशस्वी कहानीकार के रूप में आदरणीय रहे हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में यथार्थ के चित्रण पर विशेष बल दिया है। इनकी कहानियों में भारतीय गांव एवं नगर - दोनों के जीवन का चित्रण लक्षित होता है। आलोचक डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने इसी दृष्टि से कमलेश्वर की कहानियों की अत्यधिक सराहना की है।

सन् 1950 ई. से कहानी के क्षेत्र में असामाजिक भावनाओं, अनास्था, काम-कुंठा, संत्रास, घुटन, निराशा तथा जीवन के प्रति वितृष्णा को अभिव्यक्ति मिलने लगी। ऐसी कहानियों को 'नई कहानी' कहा गया। आलोचकों ने 'नई कहानी' आंदोलन के प्रवर्त्तन का श्रेय नामवर सिंह को दिया है। नई कहानी के आलोचकों का यह मानना है कि साहित्य की यह विधा बदलते हुए जीवन को पकड़ने तथा अभिव्यक्ति देने का सशक्त माध्यम बन रही है। 'नई कहानी' आंदोलन को शक्ति देने वाले तीन कहानीकार हमारे सामने आते हैं - 1. राजेंद्र यादव 2. कमलेश्वर तथा 3. मोहन राकेश।

कमलेश्वर 'नई कहानी' विधा के एक समर्थ हस्ताक्षर हैं। इनके 'मांस का दरिया', 'कस्बे का आदमी' तथा 'खोई हुई दिशाएँ' आदि कहानी-संग्रह काफी लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। इनकी कहानियों में आधुनिक जीवन-बोध की सूक्ष्मता अपनी समग्रता में निहित है। कमलेश्वर की कहानियों को आलोचकों ने 'दिशाएँ खोजने वाली' कहानियाँ माना है। कमलेश्वर-कृत 'दिल्ली में एक मौत' शीर्षक कहानी इनकी 'नई कहानी' का एक बहुत बढ़िया उदाहरण है। यहाँ इसी कहानी के आधार पर 'नई कहानी' के सशक्त हस्ताक्षर कमलेश्वर' शीर्षक विषय पर हम प्रकाश डालना संगत समझते हैं।

'दिल्ली में एक मौत' नाम्नी कहानी की कथावस्तु एक दृश्य का सहारा लेकर महानगरीय स्थितियों का चित्रण करती है। दिल्ली के करोलबाग क्षेत्र के प्रसिद्ध सेठ दीवानचन्द की शवयात्रा प्रातः नौ बजे आरम्भ होती है। कड़ाके की सर्दी है। सब लोग अपने-अपने काम में व्यस्त हैं। महानगरीय व्यस्तता के कारण लोग आत्मकेंद्रित हो गए हैं। वे दूसरों के बारे में कम ही सोचते हैं। शवयात्रा में कम लोग ही सम्मिलित होते हैं। चिता के समय केवल पाँच लोग ही वहाँ रह जाते हैं। सभी लोगों को अपने अपने हिसाब से 'जीने के लिए' साधन जुटाने की चिंता है। संवेदनाओं का स्थान औपचारिकताओं ने ले लिया है। इस कथावस्तु के आधार पर एक बात स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है कि महानगरीय जीवन संवेदना-शून्य एवं आत्मकेंद्रित हो गया है।

कमलेश्वर की कहानियों में कथावस्तु अत्यंत सूक्ष्म है। इनमें महानगर के व्यक्ति के अकेलेपन, भटकन तथा अजनबीपन आदि बातों का सुंदर चित्रण लक्षित होता है। यशस्वी आलोचक डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने कमलेश्वर की कहानियों की इस विशेषता को उनका 'मूल स्वर' माना है।

समीक्ष्य कहानी वातावरण प्रधान कहानी है। इस कहानी में कमलेश्वर ने महानगरीय सोच की अभिव्यक्ति की है। इस कहानी के माध्यम से हमारा यह कहानीकार हमें यह बतलाना चाहता है कि आज की महानगरीय सभ्यता में ज़िंदगी बितानेवाले व्यक्ति संवेदना-शून्य हो गए हैं। उनके जीवन में स्वार्थपरता, संवेदनहीनता, औपचारिकता तथा यांत्रिकता आदि कमजोरियाँ ही संपूर्णतः घर कर चुकी हैं।

कमलेश्वर ने जिस उद्देश्य को लेकर अपनी कहानियों की रचना की है, उसकी अभिव्यक्ति में लेखक को अभीष्ट सफलता मिली है, इसमें संदेह नहीं। कहानी - रचना के उद्देश्य के बारे में हमारे इस कहानीकार ने लिखा है कि - "अपने यथार्थ को वहन करते हुए, निरंतर बदलते परिवेश को देखते हुए, लिखने का प्रयास ही मेरा प्रयास है।

कहानीकार कमलेश्वर मानव-मूल्यों के संरक्षण, जीवन-शक्ति के संप्रेषण और सामाजिक विधान के नए साँचे में स्वयं को ढालने का संदेश पाठकगण को दे रहा है। हमें 'नई कहानी' के एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में कमलेश्वर की शक्ति एवं महत्ता को स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

- 'अभिवादन', 128-ए, श्याम पार्क (मेन), साहिबाबाद (ग़ाज़ियाबाद), उ.प्र.-201005

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका "विचार दृष्टि" के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके जुलाई-सितम्बर 2009 के प्रकाशन पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।
प्रो. विनोद कुमार सिन्हा
मे. प्यारेलाल एंड संस
खगौल रोड, मीठापुर,
पटना-800001

कालिदास-साहित्य में पर्यावरण

○ डॉ. (श्रीमती) नीरा कुमारी

हम जिस प्राकृतिक वातावरण में रहते हैं उसे पर्यावरण कहते हैं। हवा, पानी, धूप, गर्मी, सर्दी, सभी वातावरण के अंग हैं। इन सबका हमारे जीवन से सीधा संबंध है और ये हमें प्रभावित करते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पृथ्वी पर जीवों का अस्तित्व इनसे ही है। दूसरे शब्दों में प्रकृति पर्यावरण-विधायिका है, उन्नायिका है, प्राण-गायिका है।

प्रकृति ने धरती पर नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाई हैं, जिनके कारण धरती सुंदर और सुहावनी लगती है। हरे-भरे बाग-बगीचे, भांति-भांति के जीव-जंतु तथा मनमोहक पर्वत श्रृंखलाएँ, झरने, नदियाँ यहाँ बलात् लोकलोचनों को आकृष्ट करती हैं। लहलहाते खेत-खलिहान, फूलों से महकती रंग-बिरंगी धरती, वृक्षों के झुरमुट से आती मंद-मंद, सनसनाती ठंडी हवा और बीच-बीच में चिड़ियों का चहचहाना, जंगल में शेर की निर्भीक दहाड़, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के वनों में पगडंडी से गुजरते नर-नारी, प्रकृति की गोद में अनायास ही माता के दुलार का आनंद अनुभव करते हैं। प्रकृति हमारा भरण-पोषण और संरक्षण उसी प्रकार करती है जिस प्रकार एक माँ अपनी संतान का करती है।

ये सुहावने नाना प्रकार के पेड़-पौधे, जीव-जंतु, पर्वत, नदियाँ ही नहीं, अपितु जल के भीतर रहने वाले जीव तथा आकाश में विचरने वाले पक्षी, बहती हवा और फसलों तथा फल-फूलों से लदी वनस्पतियाँ हमारी माता के सुंदर वस्त्र और आकर्षक गहने हैं। इनसे सुसज्जित धरती केवल चित्ताकर्षक ही नहीं लगती बल्कि संपूर्ण जीव-जगत् के लिए जीवनदायिनी बन जाती है।

यह निश्चितरूपेण चिंतनीय है कि जिस माँ की गोद में जीवन, भोजन और भरपूर लाड़-प्यार मिले, उसकी रक्षा कौन नहीं करना चाहेगा किंतु आज जो परिस्थितियाँ हमारे समक्ष हैं उनमें हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि उस माता के कुछ स्वार्थी पुत्रों ने स्वस्वार्थ सिद्धि हेतु अपनी माता को अलंकाररहित कर उसे कुरूप बनाना शुरू कर दिया है।

पौधे हमारे जीवनाधार हैं उनकी तेजी से कटाई शुरू हो गई है। जहर उगलने वाले कारखानों का निर्माण निरंतर हो रहा है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई से प्राणवायु तो क्षीण होती ही जा रही है साथ ही उनसे प्राप्य आवश्यक चीजें विलुप्त होती जा रही है।

हवा के बाद जीवनाधार के लिए आवश्यक तत्व जल है किंतु बढ़ते प्रदूषण के कारण इसका भी निरंतर अभाव होता जा रहा है।

ऊँची आवाज में संगीत सुनकर हम दिनोदिन पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं और नई-नई बीमारियों का जन्म हो रहा है। ध्वनि-प्रदूषण को दूर करने के लिए संगीत की प्रतिष्ठा व्यापक स्तर पर परमावश्यक है। क्योंकि इस ध्वनि-प्रदूषण पर प्रतिबंध न लगाया जाए तो इसका दुष्परिणाम शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लगता है।

सृष्टि के आरंभ से ही हमारे पूर्वजों ने पर्यावरण-प्रदूषण की इस क्रमिक वृद्धि को रोकने का प्रयत्न किया है। उन्होंने पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में समाज का ध्यान ध्रुवीकृत किया था। नीम, पीपल, बरगद, आँवला इत्यादि वृक्षों व भूमि को ईश्वर रूप ही मानते हैं। इन्हें पूजने के पीछे यही रहस्य दृष्टिगोचर होता है। पर्यावरण की रक्षा करना पूजा का अभिन्न अंग बन गया था। अथर्ववेद की ओर दृष्टि करने से यह तथ्य सूर्यवत् संस्पष्ट है। यहाँ प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता दृष्टिगोचर होती है। यहाँ विविध प्रकार के फल, फूल, वृक्ष, झरने, कुंज, लताएँ, नदी, पर्वत, झील, सरोवर एवं समुद्र इत्यादि दिखाई देते हैं। ऐसी धारणा है कि भारत का पांचवां हिस्सा जंगल है जिसकी चर्चा महाकवि कालिदास ने बहुत पहले की है। प्रमाणस्वरूप कालिदास की निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत है -

यस्य भूमिः प्रमाडन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अर्थात् भूमि जिसकी पाद स्थानीय और अंतरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है। भारतीय साहित्यकारों ने सौंदर्यीकरण में प्राकृतिक उपादानों का उपयोग किया है। यहाँ महाकवि कालिदास के ग्रंथों में पर्यावरण संबंधित तथ्यों का मूल्याँकन करना हमारा वेध्य है। उनकी सभी रचनाओं मेघदूतम्, विक्रमोर्वशीयं, मालविकाग्निमित्र, कुमारसंभव, अभिज्ञानशाकुन्तलम, ऋतुसंहार एवं रघुवंशमहाकाव्य में प्रकृति का विशद वर्णन मिलता है।

महाकवि ने रघुवंश के तेरहवें सर्ग में समुद्र के स्वाभाविक रूप का चित्रण करते हुए कहा है - "इस फेन से भरे हुए समुद्र को देखो जिसे मेरे बनाये हुए पुल ने मलय पर्वत तक दो भागों में इस प्रकार बांट दिया है जैसे सुंदर तारों से भरे हुए शरद् ऋतु के खुले आकाश को आकाशगंगा दो भागों में विभक्त कर देती है। यह समुद्र भी सदा अपना रूप बदलता

रहता है और इतना विशाल है कि सब दिशाओं में दूर तक फैला है। इसकी व्यापकता की चर्चा वैसे ही नहीं की जा सकती जैसे भगवान विष्णु की।

एक अन्य वर्णन में ''वह देखो, काली-काली बदली समुद्र का पानी पी रही है और समुद्र की भँवर के साथ-साथ बड़ी तीव्र गति से चक्कर काट रही है।''

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि कवि को प्रकृति में उपस्थित पहाड़, समुद्रादि प्राकृतिक उपादान अत्यंत प्रिय हैं। अत: उनका वर्णन कवि को परम् इष्ट है। यह प्रवृत्ति कालिदास की पर्यावरण के प्रति चौकन्नी दृष्टि की सूचिका है।

आज वृक्ष और जल का संरक्षण ही हमारा प्रधान उद्देश्य बन गया है। जीवन का संरक्षण वृक्षों के संरक्षण के बिना असंभव है। वृक्षों में शाल और देवदारु का वर्णन प्रमुख रूप से मिलता है। कवि ने माँ पार्वती को पर्वतराज हिमालय की पुत्री कहा है। एक बार एक हाथी ने अपने शरीर की रगड़ से देवदारु के वृक्ष की छाल को छिल दिया था जिस कारण पार्वती को असहनीय पीड़ा हुई थी। उतनी पीड़ा उन्हें अपने पुत्र कार्तिकेय के युद्ध क्षेत्र में क्षत होने पर भी नहीं हुई थी। यह प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का प्रतीक है।

'अभिज्ञानशाकुंतलम' में जब दुष्यंत कण्व ऋषि के आश्रम में राजर्षि परिधान में हथियारों से लैस रथारूढ़ होकर प्रवेश करते हैं तब आश्रमवासी उन्हें रोकते हुए कहते हैं कि इस प्रकार यहाँ आना वर्जित है क्योंकि यहाँ रहने वाले जीव भयभीत हो जाते हैं। इसीलिए मनुस्मृति में आश्रम प्रवेश के समय विनीत भाव और निराभरण होकर जाने का विधान किया गया है - ''कार्यं कार्यिणम् - विनीत वेषाभरण: पश्येत्।''

लता वृक्षादिकों में देवताओं का अस्तित्व माना गया है। विदाई काल में ऋषि कण्व तथा उसकी सखियाँ ही नहीं अपितु समस्त तपोवन उसकी विरह-वेदना से पीड़ित हैं। प्रियम्वदा कहती हैं - ''त्वयोपस्थित वियोगस्य तपोवनस्यापि समवस्था दृश्यते।''

वृक्षों ने न केवल आभूषण, कौशेय वस्त्र युगल तथा लाक्षाराग ही नहीं दिया है अपितु उन्होंने कोकिला रव के द्वारा शकुन्तला को जाने की अनुमति भी प्रदान की है। ज्ञानी मानव होने के कारण तो ऋषि कण्व ने अपनी भावनाओं पर काबू पा लिया था। वास्तव में, कालिदास का यह दृष्टि-स्थापन नैतिक-प्रदूषण की रक्ष. में है।

'कुमारसंभवम्' में ही नहीं अन्य ग्रंथों में भी भुर्जवृक्षों का वर्णन मिलता है। यह बहुत ही उपयोगी है। कैलाश पर्वत के निचले हिस्से में बहुतायत रूप में पाये जाने वाले इस वृक्ष के पत्तों को मकान की छतों पर तो डाला ही जाता था साथ ही इस पर मन्त्रादि भी लिखे जाते थे। कई ग्रंथों की भी रचना इस पर की गई है। 'कुमारसंभवम्' में कवि ने लिखा है कि ''इस हिमालय पर पैदा होने वाले भोजपत्रों पर लिखे हुए लाल बुंदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं, उन्हें विद्याधारी युवतियाँ अपने प्रेम-पत्र लिखने के काम में लाती हैं। जब रघु का काफिला दिग्विजय करता हुआ हिमालय पहुँचा तो पुन: वहाँ भोजपत्रों की चर्चा कालिदास ने की है, ''वह भोजपत्रों में भ्रमण करता हुआ, पहाड़ी बाँसों के छेदों में घुसकर बंसीनाद करता हुआ, गंगा के फुहारों से शीतल वह वायु रघु की सेवा कर रहा था।'' भोजपत्रों का प्रयोग वस्त्रों के रूप में भी किया जाता था। आधुनिक युग में सिंथेटिक वस्त्रों का उपयोग बहुतायत मात्रा में हो रहा है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से कथमपि वरेण्य नहीं। भोजपत्रों का प्रयोग वस्त्र रूप में स्वास्थ्य संरक्षण हित में है। पर्यावरण का महत्त्व वस्तुत: हमारे अस्तित्व की रक्षा से ही जुड़ा है। इस दृष्टि से कालिदास पूर्वजों का ही परिपोषण कहीं-न-कहीं से करते हुए दिखते हैं।

'ऋतुसंहार' में कविकुल शिरोमणि कालिदास छहों ऋतुओं का वर्णन करते हैं। ऋतुएँ ऋतुधर्म के अनुसार पल्लव, पुष्प और फल प्रकट करती हैं। पर्यावरण की विकृति से ऋतुधर्म का पालन प्रकृति में संभव नहीं है। हिंदी कवि निराला ने प्रकृति में ऋतु-विपर्यय की बात लिखकर दर्शायी है - ''जेठ में सावन हुआ है।'' किंतु, पर्यावरण की पवित्रता से सभी ऋतुएँ अपने धर्म के अनुसार उमंग और उल्लास को प्रकट करती हैं। कालिदास वसंत में व्याप्त उल्लास को उत्सव में परिणत दिखाते हैं -

द्रुमा: सपुष्पा: सलिलं सपद्मं स्त्रिय: सकामा: पवन: सुगन्धिन:।
सुखा: प्रदोषा: दिवसाश्च रम्या: सर्वप्रियं चारुतरं वसंते।।

'मेघदूतम्' मेघ महिमा का उदात्त काव्य है। इसमें मेघ निर्मिति का वैज्ञानिक विश्लेषण -

'धूमज्योति: सलिलमरुतां सन्निपात: क्व मेघ:'

करते हुए कालिदास ने कृषि जीवनाधारित ग्रामवासियों की बाबत जल को उनके नेत्रों के लिए अमृतद्रव कहा है, वह पर्यावरण के प्रति कवि की सतर्क दृष्टि का परिणाम है -

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रू विलासानिनभज्ञै: प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनै: पीयमान:।

ऊर्ध्वकथित अमृतद्रव की उत्कट अभिलाषा पूर्ति हेतु यज्ञ की महिमा सर्वस्वीकार्य है।

''यज्ञजास्तु घना घोरा: पुष्करावर्तकादय:।''

मेघ बरसाएँ जल जो जीवन का पोषण करे। हमारी वृष-शक्ति संपुष्ट एवं संवर्धित होती रहे, इसके लिए जल-वृष्टि विघ्नित न हो, एतर्थ विद्युत-विप्रयोग कभी न हो -

''मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगा:।''

पर्यावरण के संतुलन में वृष्टि वर्णन का वर्जन कथमपि स्वीकार्य नहीं। इसीलिए कालिदास ने 'विद्युता-विप्रयोग:' लिखा है।

मेघों से ही धरती धन्यवती होती है अर्थात् मृत्तिका-प्रदूषण पर प्रतिबंध मेघों से ही संभव है। वृष-पुरुष के संपर्क से योषित् सुरभित परिमल का उद्गिरण करती है उसी प्रकार पृथ्वी भी मेघ के निष्पंद से उच्छ्वसित गन्धवाली हो जाती है। कालिदास का स्पष्ट संकेत है -

'त्वन्निष्पन्दोच्छ्वसित वसुधा गन्ध....

आजकल नैतिक-प्रदूषण बड़े स्तर पर फैल रहा है। वाक् की अमर्यादा, पुरोत्कर्ष पर जलन, पस्पतन के लिए पुरजोर कोशिश, काम ही इसके जड़ में है। गीता कहती है कि विषयों के प्रति आसक्ति से काम पैदा होता है और उसमें विघ्न पड़ने पर क्रोध उत्पन्न होता है। पुनश्च, क्रोध, सम्मोह के प्रदूषण से यात्रा करता हुआ 'प्रणश्यति' की स्थिति तक पहुँच जाता है।

संगात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते
क्रोधभ्दिवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृतिभ्रम:
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

अत: इस नाश से बचने के लिए काम का नाश आवश्यक है। कालिदास ने 'कुमारसंभवम्' में कामदेव के नैतिक-प्रदूषण की कथा बड़े रोचक ढंग से लिखी है। कामदेव कहता है कि बताइए क्या करतब दिखाऊँ? किस तपस्वी को अपने बाणों का शिकार बनाऊँ, मोक्ष के लिए प्रयत्नशील किस तपस्वी को मैं सुंदरियों के चंचल कटाक्ष से आहत करके उन्हीं की डोरी से बाँध डालूँ? शुक्र से भी नीति पढ़कर पंडित बने हुए किस चतुर ऐश्वर्यशाली को क्षणभर में अर्थ और धर्म दोनों से वंचित कर दूँ?

केनाऽभ्यसूया पदकांक्षिणा तेनितान्तदीध
ीजनिता तपोभि:।
यावद्भवत्याहित सायकस्य मत्कार्मुकास्यास्य
निदेशवतर्त्ती।। कु.3/4

असम्मत: कस्तव मुक्तिमार्गं पुनर्भवक्लेश
भयात्प्रपन्न:।
बद्धश्चिरं तिष्ठतु सुन्दरीणामरेचितभ्रूचतुरै
कटाक्ष:।।

अध्यापितस्योशनसापिनीतिं प्रयुक्त रागप्रणिधि
द्विषस्ते।
कस्याऽर्थधर्मो वद पीडयामि सिन्धोस्तटावोध
इव प्रवृद्ध।। कु.3/6

फिर संपूर्ण जगत् का कल्याण करने वाले शिव ने उपर्युक्त प्रदूषण को दूर करने के लिए मदन दहन का ही हथकंडा अपना लिया है।

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिर: खे
मरुतां चरन्ति।
तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्माऽवशेषं
मदनंचकारा।। कु.3/72

पर्यावरण संरक्षण के लिए जितनी तत्परता और तरकीब आज अपनाये जा रहे हैं या इसके लिए जो संदेश लोगों तक प्रेषित किये जा रहे हैं वे तो महाकवि के काव्यों में सर्वत्र व्याप्त हैं। शकुन्तला जब तक वृक्षों को सिंचन नहीं करती थी तब तक स्वयं भी जल ग्रहण नहीं करती थी। उनके काव्यों में पर्यावरण की चर्चा मात्र नहीं है अपितु उनमें प्रत्यक्ष निरीक्षण की स्निग्धता, सहृदयता की भी भावना है। वृक्षों की महत्ता का वर्णन केवल प्रतीक भर नहीं है अपितु वृक्षों के महत्त्व से हमारी जीवनस्थिति रेखांकित करने योग्य है। जीवन की चक्रीय क्रमस्थिति में वृक्षों को किसी भी कीमत पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

पर्यावरण के प्राणस्वरूप जो तत्व हैं, उनमें जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चंद्रमा, आकाश, पृथ्वी और वायु को परिगणित किया गया है। कालिदास 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में उपर्युक्त तत्वों के व्यासृज्य रूप भगवान शिव की वंदना करके यह स्पष्ट संदेश देते हैं कि पर्यावरण की समुचित रक्षा हेतु हमें अंदर-बाहर से सावधान रहते हुए पर्यावरण के प्रति पूज्य भाव रखना होगा -

या सृष्टि: स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या
हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्त: श्रुतिविषयगुणा या
स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिन:
प्राणवन्त:
प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु
वस्ताभिरष्टाभिरीश:।। शकु./मंगलाचरण

संपर्क :
श्री सुधांशु रंजन
मु. पंचवटीनगर, पो. राजेंद्र नगर,
पटना-16

विशेष सूचना :-

''राष्ट्रीय विचार मंच एवं विचार दृष्टि'' का तृतीय राष्ट्रीय अधिवेशन लौह पुरूष सरदार पटेल की 134वीं जयंती के अवसर पर 31 अक्टूबर एवं 01 नवम्बर 2009 को फिक्की सभागार, मंडी हाउस में आयोजित किया जायेगा।

जीवन का नया अध्याय : परदा गिरता है - परदा उठता है

○ डॉ. सुषमा शर्मा

''जीवेम् शरद: शतम्
पश्येय शरद: शतम्
श्रवणां शरद: शतम्
नंदाय शरद: शतम्
मोदाय शरद: शतम्''

भावार्थ आप सौ वर्ष जीएँ, आपकी दृष्टि सौ वर्ष तक स्पष्ट रहे, आपकी श्रवणेंद्रिय सौ वर्ष तक चेष्ट रहे, आप सौ दिन तक प्रसन्न रहें और आप सौ वर्ष तक व्यक्तियों को प्रसन्न रखें, आनंदित रखें। जीवन के प्रति हमारी ये शुभकामनाएँ हैं- जीवन का अंत है मृत्यु जो अटल है, सत्य है, शाश्वत है / यह निश्चित है जब जन्य है तो मृत्यु भी है / इसे स्वीकारना है / अकेले आए हैं, अकेले जाएँगे, इस आवागमन के बीच जो है वह है माया, मोह - इस मायाजाल से छूटना मुश्किल है / अच्छे कर्मों द्वारा हम इस जीवन को मंगलमय बनाने का प्रयत्न करें। सच भी है, जब रखोगे धीर तो मिलेंगे रघुवीर, वहाँ शिव बनो न कि शव, मंगलकारी बनो, कल्याण करो।

यह सही है - एक दिन बिक जाएगा माटी के मोल, जग में रह जायेंगे प्यारे तेरे बोल, अत: अपनी वाणी, अपना आचार ही प्रमुख है। जीवन के दो सिद्धांत हैं एक व्यावहारिक और दूसरा आध्यात्मिक। अपने जीवन को एक युगात्मक दृष्टि से देखें तो एक सूक्षात्मक स्वरूप दिखाई देगा। जैसे जीवन और .... मरण विशाल जीवन भी एक संख्या है - इस संख्या में बारह घंटे दिन, 12 घंटे रात कुल 24 घंटे का अहोरायवाला दिन! शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष मिलकर मास होता है। हममें परिश्रम और विश्राम दो प्रवृत्तियों हैं और प्रकृति और निवृत्ति जीवन साध्य हैं। मौन और वाणी माननीय संपर्क हैं। प्रयोग और चिंतन ज्ञानवृद्धि का पर्याय है, जागृति और निद्रा को शारीरिक व्यापार माना गया है वैसे ही श्वास अच्छवास प्राणों का व्यापार है इस प्रकार विहल्जनों ने जीवन और मरण को युगल रचना की संज्ञा दी है। हम जीवन को तो केंद्रित करते हैं - मृत्यु से दूर भागते हैं - पलायन लेते हैं - आखिर क्यों - उत्तर स्पष्ट है अज्ञानता, हम यह नहीं समझते हैं कि जिस आस्था से हम जीवन को अंगीकार करते हैं उसी प्रकार मृत्यु को भी अंगीकार करें! शोक तो एक भावनात्मक प्रक्रिया है। नचिकेता ने ब्रह्मज्ञान भोगा, उसने प्राप्त भी किया। पर हम नचिकेता नहीं बन सकते। यही हमारा निष्कर्ष है यही समाधान। नचिकेता बनना इतना आसान नहीं, ब्रह्मज्ञान तो दूर है? शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। मैं समय का हूँ को समझो तो समय की प्रबलता दिखाई देगी। उसकी दिव्यता में प्रभुता की महानता! एक ओर नियति तो दूसरी ओर परिश्रम!

मृत्यु के रहस्य को न किसी ने जाना है, न पहचाना है पर जीवन की कला को सभी ने जाना है - हमारे भारतीय मनीषियों ने बताया भी है। मृत्यु को एक हमारा साथी माना है। भारतीय मनीषियों ने दार्शनिक चिंतन द्वारा तत्वज्ञान का दिग्दर्शन किया है। जो जीता है वह जीव है, श्वास लेना प्राण है उसे प्राणी कहते हैं। इस प्रकार जीव और प्राणी का योग है देह धारण करना देही है मरना मृत्यु है। पंतंजलि ने प्राणायाम पर बल दिया। छह योग, ध्यान योग को बताया तो समाधि से यौगिक क्रिया।

मृत्यु के पश्चात क्या है, क्या स्वर्गलोक है? तमाम प्रश्नों का उत्तर है यही स्वर्ग है। हम ही स्वर्ग नरक बनाते हैं, अपनी मानसिकता है, शरीर से, विचारों से एवं संकल्प से। एक उद्देश्य से युद्ध में फौजी को आज्ञा मिलते ही देश की रक्षा के लिए तैयार रहता है, तत्पर रहता है - हंसते हुए अपना प्राण त्याग देता है। अमर शहीद बन जाता है। वीर सपूत कहलाता है। वीरों के लिए वीरगान ही प्रेरणा का स्रोत है, स्फुरण है, दिशा है। जब हम 'कर्मयोग' की बात करते हैं तो कर्त्तव्यबोध होता है। जो भी कर जाता है वह है 'स्मृति शेष' जीने की अनिवार्यता दूसरों के लिए है निष्काम भाव से कार्यशील रहोगे तो जीवन की कार्यशैली ही बदल जाएगी, सुख को प्राथमिकता देंगे तो जीवन विकृत हो जाएगा, सत्य को पहचान नहीं पाएँगे। धन सुख देता है पर आनंद नहीं। अत: सुख-दुख लाभ हानि जय-पराजय विधाता के हाथ है - यही जीवन है यही सब कुछ-मृत्यु को समझोगे तो उसका अभिनंदन करो, उसके हर क्षण तर पहुँचना है फिर शोर क्यों? केवल भावात्मक संबंध के लिए रोदन है। जीवन की कला को समझो, इसमें प्रवेश करो समर्पित हो जाओ, इसी ब्रह्मज्ञान में स्वयं को अर्पित कर दो। पंचतत्व में विलीन हो लो। मृत्यु देवो भव को स्वीकारोगे! किसी का बुरा न करो अच्छा हम क्या कर सकते हैं न किसी के सुख में दुखी हो, जहाँ किसी के सुख में दुखी होगे तो वहाँ द्वेष, ईर्ष्या, जलन का जन्म होगा। मनोविकारों की निर्मिती होगी। दुख को जीवन का एक अध्याय समझो सहिष्णुता के साथ-स्थितप्रज्ञ होकर।

जीवन एक नाटक है, एक जीवन की लंबी कहानी, जीवन के प्रसंगों का तानाबाना अकस्मात् विस्मय जरूर पैदा करता है पर 'होनी' कभी नहीं टलती। जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे में प्रवेश करता है, यही पुनर्जन्म है - शोक! मत करो! जब संवेदनात्मक संबंध, भावनात्मक संबंध का अंत होता है तो 'सत्य' का आभास होता है, जिस प्रकार नमक या मिश्री का ढेला पानी में डालो तो घुल जाएगा, घुलन प्रक्रिया में न नमक है न मिश्री - वैसा ही शरीर है अत: जीवन के दूसरे अध्याय 'मृत्यु' को स्वीकारो वहीं जीवन का अंत है तो जीवन का प्रारंभ। एक नाटक की भांति परदा उठता है परदा गिरता है।

- डॉ. सुषमा शर्मा, 'प्रेममंजरी' डी-20, चोमू हाऊस, जगनपथ, सी-स्कीम, जयपुर, फोन-2372523

संस्कृत साहित्य की सार्थकता

○ लक्ष्मीकांत मिश्र

सभ्यता के अनमोल प्रयोगों और परिणामों को संजोनेवाला संस्कृत साहित्य समय के प्रभाव से आज जिस प्रकार उपेक्षा का शिकार हो रहा है वह किसी भी विवेकशील विचारक के लिए चिन्ता का विषय है। इसकी खोयी हुई विशिष्टता पर विचार के लिए इतिहास के पीछे जाना आवश्यक है। कोई भाषा और साहित्य उसे उपयोग में लाने वाले समुदाय के आचार-विचार का प्रतिबिम्ब होता है। संस्कृत साहित्य की भौगोलिक पृष्ठभूमि भारतीय उपमहाद्वीप का वह भू-भाग है जो प्राचीन काल में सम्पन्न, सुरक्षित और सुरम्य क्षेत्र था। अन्य क्षेत्रों की तुलना में यह अस्तित्व के वर्चस्वहित संघर्ष के कोलाहलों से मुक्त और एकान्तिक साधना के लिए पूर्णतया अनुकूल था। उस काल की ''शताब्दियाँ'' आज के तीव्र गति से बदलते परिवेश की तुलना में 'दिनों' के समकक्ष है। इसलिए जहाँ एक और स्वतंत्र और निरापद विकास के लिए आर्यों को हजारों वर्षों के लम्बे समय का वरदान मिला, वहीं सुदूर प्रागैतिहासिक कालों के इस स्वर्णिम जीवन-निर्माण के साक्ष्य आधुनिक जिज्ञासा के लिए उपलब्धा नहीं रह सके। प्रागैतिहासिक कालों की जानकारियों के लिए परम्पराओं, कल्पनाओं, तथा प्रचलित रस्म-रिवाजों आदि के बदलते स्वरूपों के सूक्ष्म संकेतों पर ही निर्भर करना पड़ता है। इनके अलावा, इतिहासकारों की विशेष पृष्ठभूमि, शिक्षा, अभ्यास तथा वैचारिक स्तरों की विशेष छाया उनके विश्लेषणों पर पड़ती है। इस क्षेत्र में विशेष रूप से जाग्रत और सक्रिय यूरोपीय दृष्टि है, जो यूरोपीय इतिहास के सामन्तवादी अथवा समाजवादी विचारों से अधिक प्रभावित है।

इतिहासकारों, विशेषकर पश्चिमी इतिहासकारों की नजर में भारत का इतिहास मुख्यत: बुद्ध के समय से प्रकट है। बुद्ध द्वारा अहिंसा का प्रयोग उनकी नजरों में सर्वथा नवीन, अनोखा और महत्वपूर्ण है। संस्कृत साहित्य की रचना का लम्बा समय बुद्ध के बहुत पूर्व का-आर्यो द्वारा स्थापित बहुमुखी व्यवस्था के उत्कर्ष का काल था, जो अनेक मूल्यवान उपलब्धियों को अर्जित कर बुद्ध के आने के समय तक विकृत हो चुका था। वास्तव में भव्य बौद्ध-महल की नींव में आर्यो द्वारा पूर्व में निर्मित और अनुभव सिद्ध 'ईट' ही थे। 'आत्मा', 'पुनर्जन्म', 'सन्यास', 'भिक्षाटन' आदि आर्यो के 'सनातनमार्ग' द्वारा निर्देशित मार्गदर्शन के अंश ही थे। 'सनातनमार्ग' का आन्तरिक संयम-'अक्रोध' का ही बाह्य प्रकट रूप 'अहिंसा' है। सनातन मार्ग का स्पष्ट कालातीत मत है कि कोई व्यवस्था कितनी ही युक्तियुक्त क्यों न हो, समय के प्रभाव से विकृत हो ही जाती है, जिसके सुधार हित महापुरूषों को आना पड़ता है। स्वयं बौद्ध धर्म का भी बाद में वही हाल हुआ। बुद्ध का सनातन मार्ग का विरोध मुख्य रूप से दो पहलुओं पर था। प्रथम, भ्रष्ट हो चुकी व्यवस्था का पाखण्ड और दूसरा विकृत कर्मकाण्डों द्वारा फैली वीभत्स हिंसा। इस संबंध में दो बातें विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। सनातन मार्ग अथवा 'ब्राह्मण मार्ग' (जैसा की बुद्ध द्वारा संबोधित है) के द्वारा ही स्थापित एक सर्वसम्मत व्यवस्था थी कि किसी नई व्यवस्था को स्थापित करने अथवा किन्ही वैचारिक द्वन्दों की स्थिति में वैज्ञानिक विश्लेषणों और विमर्श के आधार पर ही सर्वसम्मत निर्णय स्वीकार्य थे, जिसे 'शास्त्रार्थ' कहा जाता था। इसी प्रणाली के बल पर बुद्ध सम्पूर्ण उपमहाद्वीप में घूम-घूम कर ब्राह्मण मार्ग की कटु आलोचना करते रहे और किसी ने उनको रोका नहीं। और दूसरी बात यह कि कुछ समय पश्चात् उन्हीं ब्राह्मणों ने बुद्ध की करूणा को स्वीकार कर उन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ सम्मान का पद- अवतार घोषित किया। संस्कृत साहित्य इस उदार वैचारिक क्रांति का साक्षी है।

आर्यो के विकास की प्रारम्भिक अवस्था विराट विश्व में निराधाार, स्वयं अपने स्वतंत्र अनुभवों द्वारा ही धैर्यपूर्वक अपना पथ निरूपित करने की अवस्था थी। प्रारम्भिक परिचय के क्रम में ही प्रकृति के सकारात्मक पहलूओं के ज्ञान ने उनमें प्रबल जिज्ञासा और गहराई से अध्ययन का संकल्प खड़ा कर दिया। मानव कमजोरियों पर आधारित अन्धविश्वासों से दूर निरपेक्ष सत्य के प्रति उनकी सरल और सहज जिज्ञासा अमूल्य वैचारिक धरोहर की तरह वेदों में अंकित है। ''सृष्टि के पहले क्या था? जब न सत् था, न असत् था, न मृत्यु न जीवन ही था, धौ नहीं था, ये सूर्य, ये सितारे, दिन-रात, कुछ भी तो नहीं था, तो क्या था? कौन कह सकता है?'' आदि! आर्य विद्वान सत्य और अपने बीच किसी बड़ी से बड़ी शक्ति के काल्पनिक अथवा भावनात्मक हस्तक्षेप या सहारे को पसन्द नहीं करते थे। और फिर बिना किसी बाहरी सहारे के, स्वयं उनका उत्तर था ''आरम्भकाल में जो प्रकाश का मूल था, जिसने पृथ्वी, धौ, आकाश, सारे नक्षत्रों को धारण कर रखा है-उन सब के स्वामी के सिवा और किस देवता की हम आराधना करें?'' आदि। बिना भय के, केवल आह्लाद और गरिमा के साथ

एकेश्वरवाद का शुद्धतम नैसर्गिक रूप! वास्तव में वेद सार्वभौतिक ज्ञान-विज्ञान का ग्रन्थ है-किसी देश, द्वीप या लोक विशेष तक सीमित नहीं है।

भौतिक साधनों के नितान्त अभाव में प्रबल जिज्ञासा की प्रेरणावश प्राचीन मनीषियों की पैनी दृष्टि स्वयं अपने अंदर की आन्तरिक ऊर्जा के विशाल भंडार पर पड़ी। मानव संसाधन के इस विलक्षण आयाम-प्राणायाम के परिचय ने उनमें असीम शक्ति की सम्भावनाओं को भर दिया। प्रकृति में घटने वाली घटनाओं के गहराई से अधययन के द्वारा इन्होंने दो महत्वपूर्ण सूत्र प्राप्त किए-''कार्य-कारण नियम'' और ''प्रकृति समरूपता नियम'', ये सूत्र न केवल उनके अनुसंधान कार्यो में बड़े सहायक बन गए बल्कि उन्हें वैज्ञानिक दृष्टि का लाभ भी दिया। आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व भारतीय वैज्ञानिकों ने विलक्षण अनुसंधान के कार्य किए। एक महत्वपूर्ण शोध के अनुसार स्थूल द्रव्य से लेकर ऊर्जा तथा चेतना के सूक्ष्म स्तरों तक समस्त शक्तियाँ एक दूसरे में रूपांतरित होती रहती हैं। ये ही प्रकृति के सारे व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों और शक्तियों के भिन्न रूपों के कई स्तरों पर कार्यरत है। वैज्ञानिक खोजों और जीवन के भिन्न आयामों में एक साथ विकास के लिए भारतीयों ने वैज्ञानिक रीति से एक संतुलित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की। रूचि और क्षमता के अनुरूप विशेषज्ञता आधारित सामाजिक स्वंरूप की रूप-रेखा तैया की जिसे 'वर्ण-व्यवस्था' की संज्ञा दी गई। समाज के सभी अंग अपेक्षित रूचि के अनुरूप कार्यो में पूर्ण लगन और निष्ठा के साथ संलग्न हो गए। भले ही बाद में गलत व्याख्या के परिणामस्वरूप समय के प्रभाव से यह व्यवस्था वंशानुसार बना देने के कारण आज समाज को अनेक टुकड़ों में बांटने वाली अभिशाप बन गयी है, किन्तु, उस समय वह वैज्ञानिक रीति से संचालित होने के कारण हर क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति का प्रमाण बन गई। औषधि विज्ञान के क्षेत्र में लम्बे काल तक अध्ययन के परिणामस्वरूप आयुर्विज्ञान का जो महत्वपूर्ण तंत्र स्थापित किया गया उसके विशेष महत्व के कारण उसे वेद के समान 'आयुर्वेद' नाम दिया गया। उल्लेखनीय है कि सह-दुष्प्रभावों से मुक्त यह औषधि विज्ञान आगे की प्रतिकूल सदियों से गुजरते हुए भी आज तक बिना किसी बाहरी मदद के अन्य चिकित्सा विधाओं के मुकाबले सर उठाकर खड़ा है। गणित के क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिकों ने न केवल शून्य की खोज के साथ आधारभूत संरचना तैयार की बल्कि अनेक शाखाओं में महत्वपूर्ण खोज किए। धातु विज्ञान आदि में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अंतरिक्ष विज्ञान में अंधविश्वासों को दूर करने वाली ज्योति स्वरूप ज्योतिर्विज्ञान से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण खोज वैदिक काल में ही किए जा चुके थे।

वैज्ञानिक दृष्टि और सोच की मौलिकता ने आर्यों द्वारा किए गए अनेक प्रयोगों को दुनियाँ के अन्य भागों में हुए प्रयोगों से सर्वथा भिन्न और तार्किक श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया है। समाज विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों ने अनेक स्वतंत्र सिद्धांत निरूपित किए। सामाजिक सहयोग प्राप्ति हेतु व्यक्ति और समाज के बीच मधुर संबंध कायम करने का उन्होंने एक विशेष प्रयोग किया। बच्चों को छोटी उम्र में ही शिक्षा के लिए 'गुरूकुल' में दाखिल करने की व्यवस्था बना दी गई, जहाँ समर्पित विद्वानों के निर्देशन में उनके चरित्र और ज्ञान का विकास होता था। गुरूकुल के क्षेत्र विशेष में राजस्व आदि करों में विशेष छूट सरकार की ओर से दी जाती थी। बच्चों को अपने अभिभावकों से खर्च लेने की सख्त हिदायत थी। बच्चे घर-घर जाते और लोग उन्हें स्वेच्छा से स्नेह और सम्मानपूर्वक भोजन आदि दान में देते। यह भिक्षाटन दरिद्रता आधारित नहीं, दायित्व आधाारित था। बच्चों के कोमल मन पर समाज के प्रति प्यार और आभार की गहरी छाप-भारतीय समाजवाद का नैसर्गिक रूप प्रस्तुत करता है-जो व्यक्ति और समाज के बीच के अटूट भावात्मक संबंध का स्थापक था। व्यक्ति के लिए परिवार पूरा समाज ही था और समाज का भविष्य-व्यक्ति। आधुनिक समाजवाद में व्यक्ति और समाज के बीच एक यन्त्र-सरकार होती है, जो शख्त कानूनों द्वारा समाज के व्यापक अधिकारों पर व्यक्ति द्वारा अतिक्रमणों को नियंत्रित करती है। आधुनिक इतिहास में यह प्रयोग सफल नहीं रहे। भारत में बहुत पूर्व एक महान दार्शनिक 'शुक्राचार्य' शोषक शक्तियों के विरूद्ध श्रमिकों के हित के लिए जीवनभर संघर्षरत रहे। उनका भी सिद्धान्त आधुनिक समाजवादी की तरह था- ''परिणाम ही साधान के औचित्य का प्रमाण है'', उनके निर्देशन में राजा बलि द्वारा आज के केरल प्रान्त में श्रमिकों का आदर्श स्वराज स्थापित किया गया था, जो शासक और शासित के बीच मधुर संबंधाों का आदर्श उदाहरण संस्कृत की सम्पत्ति है। छल से राज्य हर लेने के पश्चात् अन्तिम इच्छा के रूप में राजा द्वारा वर्ष में एक दिन अपनी प्रजा से मिलने की अनुमति मांगना, और तब से उस दिन को राज्य की जनता द्वारा सबसे प्यारे पर्व के रूप में आज तक मनाना अत्यन्त ही भावुक प्रसंग है। आधुनिक समाजवाद में सत्ता से हटने के पशचात् शासक का भविष्य अनिश्चित होता है।

भारतीय वैज्ञानिकों ने अनुभव किया कि चेतना और जड़ता का निरन्तर द्वन्द्व प्रकृति का आधारभूत तथ्य है। चेतना प्रेरणा है, प्रकाश है, उधर्वगामी गति है। जड़ता इसके विपरित आलस्य, अन्धकार

और अधोगामी गुरूत्व है। इसलिए समाज को वैज्ञानिक खोजों द्वारा भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध कराकर ही अपने कर्त्तव्य की सीमा उन्होंने स्वीकार नहीं की। समाज की इकाई-व्यक्ति को चेतना के मुख्य अवयवों-प्रकाश, उदारता, वृहत् का भाव आदि के निरन्तर सम्पर्क में रखने की व्यक्ति के अन्तर्जगत को सतत् प्रकाशित और सक्रिय रखने की उन्होंने ठोस योजना तैयार की। अनेक प्रकार के मन्त्रों (सलाहों) और औपचारिकताओं द्वारा व्यक्ति को सतत् जागृत रखने और सत्य का सामना करने का साहस दिलाने की व्यवस्था की गई है। उदाहरण के तौर पर स्थान और काल के विराट रूप को जिसे चौदह भुवनों (आयामों) में बंटे होने की अवधारणा भारतीय वैज्ञानिकों की थी, 'सनातन मार्ग' में उसे 'अनन्त भगवान' के रूप मे मानकर चौदह गांठों वाले धागे को सतत् पहनने की प्रथा है। ज्ञान को आस्था के साथ जोड़कर तथा विज्ञान को धर्म के सहयोगी रूप में प्रस्तुत कर व्यक्ति को सतत् 'वृहत के भाव' में स्थित रखने का विधान है। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र के आधार पर लम्बी अवधि की काल गणना के लिए सूर्य द्वारा विषुवत् रेखा पर अयन पार करने के बिन्दु 'सम्पात् बिन्दु' के भ्रमण काल का उपयोग किया जाता है। चलन्त 'सम्पात बिन्दु' का अपने केन्द्र से 27 पूरब जाकर वापस केन्द्र पर लौटाना और पुनः 27 पश्चिम जाकर केन्द्र पर वापस लौटाने में कुल 108 का चक्र (टेबुल फैन की तरह) पूरा करता है। जिस नक्षत्र के सामने यह 'सम्वात् बिन्दु' पड़ता है, उससे अन्तर निकालकर किसी घटना का काल निर्धारण किया जाता है। इस 108 के चक्र को पूरा करने में 3600 वर्षों का समय लगता है। इस चक्र को 108 दानों की माला के द्वारा प्रतीक रूप मे प्रस्तुत कर वैज्ञानिक द्वारा बृहत् भाव में व्यक्ति को सतत् जागृत रखने का यह उच्च कोटि का प्रयास है। किसी की मृत्यु के उपरान्त उनके निकटतम परिजन द्वारा ही स्पष्ट रूप मे इस सत्य की घोषणा करते हुए दाह-संस्कार करने का विधान है-'वास्तविक व्यक्ति तो विगत हो गए, अब इस सविकार निरर्थक शरीर को हम जला रहे हैं।' साथ ही सत्य की कठोरता से कोमल मानवीय भावनाओं की रक्षा कर पुनः उन्हें (कर्त्ताओं) सक्रिय जीवन मे नई ऊर्जा के साथ नियोजित करने के लिए श्रद्धा आधारित श्राद्धकर्म का विधान है। इस प्रकार व्यक्ति के दैनिक जीवन में अनेक प्रकार की औपचारिकताओं द्वारा संकीर्ण विचारों से उपर उठकर सतत् उदार दृष्टि रखने की व्यवस्था है।

आस्था का क्षेत्र भी आर्यो के लिए अन्य क्षेत्रों की तरह निराला और रोचक है। प्रकृति की महान विभूतियों का परिचय तो आर्यो के लिए वैसे भी कृपापूर्ण था ही विशेष अधययन के बल पर जब उन्हें पता चला कि ऊपरी सतह पर की प्रतिकूल शक्तियाँ भी परोक्ष रूप से पूरक और सहायक ही हैं तो स्वाभाविक तौर पर ही उनकी सम्भावनाओं को विश्वास का बल मिल गया। इन सबके साथ ही आन्तरिक ऊर्जा के विशाल भण्डार की प्राप्ति द्वारा प्रकृति की मौन दानशीलता ने इनके हृदय को असीम आभार से भर दिया। भावुक आर्यों के सामने सम्पूर्ण प्रकृति करूणा की प्रतिमूर्ति बनकर खड़ी थी। इस उदारता से अभिभूत मानव के लिए अपने दाता के कल्याणकारी शिवरूप की कल्पना काव्यात्मक शैली में गौरवर्ण हिमालय की सौम्य समाधिस्थ आकृति में प्रतीकात्मक रूप से साकार हो गई, जिसकी जटा से सरस प्राणदायिनी गंगा की धारा बह रही हो, माथे पर वर्धमान चन्द्र के साथ भयानकता के प्रतीक नाग और भद्रता के प्रतीक बैल-भेदभाव रहित बृहत परिवार के सदस्य हों। प्रकृति की विराट अभिव्यक्ति का संक्षिप्त रूप-भारतीय समन्वयात्मक दृष्टि का आदि स्त्रोत!! विश्व साहित्य का यह पहला महाकाव्य था और शिव पहले महाकवि।

''कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः!''

आस्था के इस नैसर्गिक रूप से अलग दूसरा स्तम्भ विष्णु का है। सर्वप्रथम 'चक्र' का महान आविष्कार हुआ जिससे परिवहन का नया युग शुरू हुआ। 'चक्र' के चर्चित आविष्कारक हरि ने आगे चलकर प्रकृति और जीवन के सभी आयामों चक्रीय नियम में का उदघाटन किया। हवा, पानी, बीज-वृक्ष, पक्षी-अंडा, जन्म-मृत्यु आदि सभी क्षेत्रों मे व्यापक (विष्णु) चक्रिय नियम की खोज करने वाले हरि का नाम ही 'विष्णु' पड़ गया। इस चक्रीय दर्शन के अनुसार अखिल जीवन-वृत्त के केन्द्र पर चेतना का सूक्षमतम बिन्दु 'आत्मा' और परिधिपर बाहरी ऊर्जा के अवयव स्थित है। इस वृत्त के केन्द्र बिन्दु से होकर बाहरी परिधि के विपरित ध्रुवों को मिलाने वाली जीवन-रेखा का नाम उपमा स्वरूप 'व्यास' रखा गया, जो सम्पूर्ण जीवन के अभिज्ञाता और अभिव्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध है।

इस सुन्दर दर्शन-'चक्र सुदर्शन' की प्रतीकात्मक प्रस्तुति भारतीय जीवन दर्शन की आधारशीला है, जिस पर आगे आने वाले भारतीय मूल के प्रायः सभी सम्प्रदाय किसी न किसी सीमा तक निर्भर करते है। विज्ञान और कला के शिखरों के स्वर्णिम सामंजन के रूप में ये प्रतीक प्राचीन वाङ्मय की अमूल्य निधि है, जो लम्बे समय तक उपेक्षा के कारण अपने मौलिक अर्थो के लोप हो जाने से दुकानों मे 'शो' के लिए रखी भव्य मूर्तियों की तरह प्राणहीन प्रतिभाएँ बन कर रह गई है। संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वानों से अपेक्षा की जाती है कि मौलिक अर्थो के द्वारा उनकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठा कर उन्हें

जीवन्त बनाया जाय। परिश्रमपूर्वक पूर्वजों द्वारा प्राप्त प्रशस्ति पुर्नजागरण की प्रतीक्षा में पंडितों के आगे प्रणत् हैं। पंडितों की प्रतिष्ठा भी इसी 'प्रशस्ति' के साथ प्रतिबद्ध है। आस्था के अन्य प्रमुख स्तम्भों में समय-समय पर अवतरित होने वाले महापुरूषों के विशिष्ट चरित है, जिन्होंने अपने त्याग, बलिदान और विलक्षण विचारों से मानव विकास को महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें से कुछ तो सनातन मार्ग के समय-समय पर आने वाले सुधारक थे। और, कुछ अपनी नवीन विचार-धाराओं पर नवीन मार्गो या पंथों की स्थापना के द्वारा लोकनायक के रूप में प्रसिद्ध हुए। 'सनातन-मार्ग' ने, अन्य पंथों से भिन्न उन सभी पंथों को जीवन के प्रति विशेष दृष्टि रखने वाले पूरक की तरह स्वीकार कर एक समन्वित विचारधारा के रूप मे आगे बढ़ाने का कार्य किया। प्रत्यक्ष देवता 'सूर्य' की उपासना करनेवाले हों, अथवा गणतंत्रात्मक व्यवस्था में विश्वास करने वाले 'गणेश' के पूजक हों, अथवा मातृशक्ति के रूप में 'दुर्गाभवानी' के उपासक हों, सनातन मार्ग ने सबको सम्मानपूर्वक एक सूत्र मे बांधकर लोक संग्रह का आदर्श समन्वयात्मक रूप दिया। किसी शुभ अवसर पर 'पंचदेवता' (शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और दुर्गा) की पूजा का सनातन मार्ग में विधान है। जगतगुरू शंकराचार्य को षड्मत स्थापनाचार्य भी कहा जाता था। शैव, वैष्णव (वेदान्ती), बौद्ध, नैयायिक, जैन तथा मीमांसक सभी मतों को उन्होने एक साथ प्रतिष्ठित किया।

नीवन युग के नए संदर्भ में दो महत्वपूर्ण विचारधाराएँ-'क्रिश्चियन' और 'इस्लाम' अपने-अपने विचारों के एकांगी वर्चस्व स्थापित करने हेतु शस्त्र को आगे कर हिंसात्मक मार्ग से तत्पर है। ऐसे में सनातन मार्ग ''सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:खभाग भवेत्'' वाले सिद्धांत को मानता है। इसके समन्वयात्मक मन्त्र को आज के संदर्भ में विस्तार कर कहा जा सकता है कि-

''यं शैवा: समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटव: कर्त्तेति नैयायिका:
अर्हं नित्यथ जैन शाश्वत् रता: कर्मेति मीमांसका:
सोऽयं 'क्रिश्चन' जीससेति भजते अल्लेति इश्लामका:''

किन्तु आज समय के क्रूर चक्र में अभद्रताओं के भीषण आघातों ने, जैसे विद्रूप हो चुके इस 'राजा नल' (संस्कृत साहित्य) को आत्मग्लानि के अन्धकार में खो जाने को विवश कर दिया है। सभ्यता का प्रथम मार्ग दर्शक संस्कृत साहित्य आज स्वयं अन्धेरी गलियों में उपेक्षा का दंश झेल रहा है। लम्बे समय तक चेतना के नवीकरण की वैज्ञानिक प्रणाली-शास्त्रार्थों के अवरूद्ध हो जाने, और अपमानजनक दासता के कठिन दौर मे, जब मूल्यों के प्रति आनास्था और टूटे मनोबल के साथ हमारा समाज आत्म विस्मृत अवस्था में था, तब जड़ता आधारित अनेक प्रकार की बीमारियों अन्धविश्वास, संकीर्ण दृष्टि, निराशा, कटुता और हिंसा के आक्रमणों के कारण इसने अपनी उज्जवल पहचान खो दी है।

आज हम राजनीतिक रूप से स्वतंत्र है, और भौतिक क्षेत्रों मे प्रगति भी हो रही है। परन्तु हम आन्तरिक रूप से कही कमजोर हैं। सर्वाधिक अशोभनीय बात तो यह है कि आज हमारा समाज ऊँच-नीच, छूत-अछूत के रूप में अनेक खण्डों मे विभक्त है। किसी भी समुदाय अथवा जाति के लिए इससे बढ़कर और क्या दुर्भाग्य होगा कि उसे अपने ही लोगों से घृणा हो? हम शबरी के जूठे बेरों की महिमा गाते हैं, और शबरी से घृणा करते हैं। 'न हि मानवात् श्रेष्ठतरं हिकिंचित्' का वाचन करने वाले पशुमल (गोबर) को आदमी (अछूत) से श्रेष्ठ मानते है। दूसरी बात यह है कि पश्चिम की भौतिक प्रगति के आधार पर वह जीवन दर्शन हम पर हावी होने का प्रयास कर रहा है, और हम भी सम्प्रति इसी मनोहीनता के शिकार हो रहे हैं। हमारी क्षमता के एहसास इतिहास के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं। हम भूल गए हैं कि केवल भौतिक उपलब्धियाँ ही किसी जाति की पूंजी नहीं हो सकती, हमारे पास उदार जीवन दृष्टि है, जिस आधार पर भारत का इतिहास दुनियाँ के अन्य भागों के इतिहास से भिन्न है। हमारा इतिहास विचारधाराओं, पंथों के समन्वय का इतिहास है-क्रूशेड्स का इतिहास नहीं। आज भी सर्वाधिक सभ्य कहलाने का दावा करनेवाले भिन्न समुदायों के सम्बन्धों को 'सभ्यताओं का संघर्ष' बताते हैं। किन्तु हम उन्हें सभ्यताओं का पवित्र संगम मानते हैं। विकसित, अविकसित, वनवासी तथा भिन्न प्रजातियों को हम सम्मिलित परिवार के सदस्यों की तरह सौहाद्रपूर्ण वातावरण में रखने का प्रमाण दे चुके हैं।

परन्तु ये सारी बातें समय के लम्बे अन्तराल में हमारी स्मृतियों से मिट चुकी है। किसी भी जाति अथवा समुदाय के ऊपर उठने का बल उसके आन्तरिक मनोबल से पैदा होता है। संस्कृत साहित्य ही हमें अपने खोये मनोबल को विगत काल की उपलब्धियों के जीवंत चित्रों द्वारा पुन: नई स्फूर्ति का संचार कर ऊपर उठने में सहायक हो सकता है। संस्कृत साहित्य हमारी बौद्धिक सम्पदा है, हमारा सर्वोत्कृष्ट उद्बोधन है।

उत्तिष्ठ! जाग्रतृ!! प्राप्यवररन्निबोद्धत!!!

- 3/12, पश्चिमी महेश नगर
पटना-24
फोन : 0612-2266364

हम मौन क्यों पिये हैं

○ रचनाकार - डॉ. राकेश कुमार सिंह
समीक्षक - डॉ. सुषमा शर्मा

प्रकाशक - स्तंभ प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ-80, मूल्य 50/-

साहित्य एक साधना है। इस साधना से स्वयं को संस्कारित किया जा सकता है, और दूसरे को भी संस्कारित किया जा सकता है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कविताएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। इस संग्रह में एकतीस कविताएँ हैं; जिनमें नए प्रतीकों का समावेश है और पाठकगण भी नए विवेकों के प्रतिमान से रुबरु होंगे। हर कविता रचनाकार के अनुभव एवं उसकी अभिव्यक्ति से प्रेरित है। भावों और शब्दों का तांडवनृत्य, भावभंगिमाएँ संवेदनाओं को अंगीकार करती है। रचनाकार एक प्रकार से स्वगत भाषण करते हैं - हम मौन क्यों पिये हैं? ऐसा लगता है मानो रचनाकार इस बात को स्वीकारते हैं कि अन्याय क्यों सहें?

क्योंकि अन्याय सहना और अन्याय करवाने को प्रेरित करना दोनों ही अपराध हैं। संग्रह में ऐसी कविताएँ हैं जिनका रचनात्मक फलक काफी बड़ा है; कई संदर्भ ऐसे रेखांकित हैं जो अपनी छाप छोड़ते हैं। प्राय: कविताओं में एक प्रकार से चिंतनधारा प्रवाहित है - 'हत्यारा कोई एक नहीं' नामक कविता उदाहरण के रूप में दृष्टव्य है -

''असाधारण किस्सा है
सच मानिये पर / पूरे समाज का इसमें
कुछ न कुछ हिस्सा है'', पृ.28

इसी प्रकार 'शब्द बचेंगे तो तुम भी बचोगे नामक कविता में रचनाकार कहते हैं -

''शब्द घिरे हैं / घिर रहे हैं बार-बार
भीतर ही भीतर
न जाने कब से / मरते मारते हैं
और मर रहे हैं आज भी''

रचनाकार आन्हात भी करते हैं - बचा लो उन शब्दों को / जो महसूस कर सकें
शब्द बचेंगे तो तुम भी बचोगे
आदमियत तुम में ही बची है।
अगली दुनिया तुम ही तो रचोगे, पृ.30

इसी प्रकार आँखें खोले तो सही नामक कविता यहाँ पर रचनाकार ऊँची उड़ान नहीं भर रहे हैं अपितु प्रयत्न करने पर जोर दे रहे हैं - वह भी समवेत स्वर में ताकि बोलेंगे हजार मुँह।

जिंदाबाद-जिंदाबाद
इंकलाब - इंकलाब....
उभरेगा सार्थक चित्र
तूलिका लिये मित्र
जिंदगी के रंग जरा
धोलो तो सही आंखें खोलो तो सही, पृ. 32

रचनाकार ने समग्र रचना कर्म और जीवनवृत्तों को केंद्रित करते हुए एक नई दिशा दी है। एक व्यापक विश्वदृष्टि है, रचनाकार के सोच में स्पष्टता है। स्वयं को एक समूह के साथ जीवन विस्तार को समझाते हैं। यह कहकर 'हम मौन क्यों पिए हैं? रचनाकार की सूक्ष्म दृष्टि कैसे जीवन पर हावी है इसका भावबोध इनकी कविताओं में यत्र तत्र है। रचनाकार के स्वयं के उद्‌गार हैं 'उस गांव को जिसने हमें कविता दी'' समर्पण के भाव से ओत-प्रोत यह कृति अवश्य ही स्वागत योग्य है।

कविताएँ बौद्धिक चैतन्य से ओत प्रोत हैं जो जीवन के प्रति आस्थावान् होने के लिए प्रेरित करती हैं, जैसे -

''सुबह हो, जन के नमन से'' - इसमें प्रात: के आगमन का स्वागत करते हुए नमन के साथ वसुधैव कुटुम्कम् की भावना को उभारने का प्रयास किया है मानव में मानवता आने का, समाने का आग्रह भी किया है। 'मत पोतो अँधियारा अतीत की रात का'' - बीत गई सो बात गई को अपनाते हुए एकता, सद्‌भावना, सदाचार की गुणवत्ता दर्शायी है - बानगी''

आदमी को / आने दो / आदमी के पास / मत बनाओ बैरियर / भाषा को जाति को / संदर्भहीन इश्तहार / धर्म और प्रांत के / बचो अलगाव से / भर दो रत्नगर्भा का / रीता राता आंचल मानुवी सुंगध से..., पृ. 12-13

आंखें खोले तो सही / उड़ो / उड़ते ही रहो / अविरल, अनवरत / अपने लक्ष्य तक.... बोलेंगे हजार मुँह / जिंदाबाद, जिंदाबाद / इंकलाब-इंकलाब / बोलो तो सही... पृ.31.

- 'प्रेममंजरी' डी-20,
चोमू हाऊस जगनपथ,
सी-स्कीम जयपुर, फोन-2372523

विशेष सूचना :-

''राष्ट्रीय विचार मंच एवं विचार दृष्टि'' का तृतीय राष्ट्रीय अधिवेशन

लौह पुरूष सरदार पटेल की 134वीं जयंती के अवसर पर 31 अक्टूबर एवं 01 नवम्बर 2009 को फिक्की सभागार, मंडी हाउस में आयोजित किया जायेगा।

इन्सानियत के आइने में

○ डॉ. चन्द्रिका ठाकुर,

विश्वास लुट रहा है
आस्था बेपनाह हो गई है
मांग ही मांग सब कुंओं में
इंसानियत सो गई है।

साहित्य सेवा एक साधना है। स्वयं के साथ-साथ दूसरों को भी संस्कारित करना साहित्यकार का परमकर्तव्य एवं दायित्व होता है। 'हम मौन क्यों पिये हैं' संकलन की रचनाएँ पाठक को कितना सम्प्रेषित एवं प्रभावित करेगी, नहीं कहा जा सकता किंतु रचनाकार डॉ. राकेश कुमार सिंह के प्रस्तुत संकलन ने बहुत कुछ रचा एवं निर्मित किया है। रचनाकार डॉ. सिंह कवि, कहानीकार एवं उपन्यासकार तीनों ही दृष्टिकोणों से साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अर्थात् इन्हें साहित्य की विविध विधाओं पर समानाधिकार प्राप्त है।

डॉ. राकेश कुमार सिंह जनवादी विचारधारा से काफी प्रभावित हैं। रचनाकार की जनवादी चेतना एवं पक्षधरता गद्य एवं कविता दोनों में दृष्टिगोचर होते हैं। कवि ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि मैं बहुत दिनों तक जनवादी लेखक संघ का सचिव था। जनवादी कवि यथार्थवादी होता है। जन सामान्य ही इनकी संपूर्ण आशाओं का प्राणकेंद्र होता है। 'हम मौन क्यों पिये' संकलन की अधिकांश कविताएँ इसी चुनौती का परिचायक एवं महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। जन पक्षधरता को समर्पित डॉ. सिंह की यह कविता संग्रह यथार्थोन्मुखी है।

आलोचना समीक्षा का विषय कविता की पंक्तियों पर आधारित है। इस तरह का विषय मैंने इसलिए रखा है, क्योंकि रचनाकार ने उक्त संकलन में 'इंसानियत' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है। समय के साथ मनुष्य का मनुष्य से विश्वास खत्म होता जा रहा है। किसी पर पूर्णत: आस्था लगाये रखना आज व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। सभी ओर भ्रष्टाचार का वर्चस्व सुरसा की भांति मुंह फैलाए हुए है। ऐसी परिस्थिति में इंसानियत कुम्भकरण की निंद्रा में सो गई है। रचनाकार इस सोई हुई इंसानियत एवं लूटा हुआ विश्वास एवं आस्था को जागृत करना चाहता है, तभी तो रचनाकार कहता है - मत खींचो खर्राटे, बांचकर अखबार, कुछ करो ताकि सुमन हंस दे नव प्रभाव के, अपनत्व से नम हों हवायें, प्यार बरसे बादलों से सौहार्द्र की छायें घटाएँ।'

संख्या की दृष्टि से 'हम मौन क्यों पिये हैं' संकलन में अधिक कविताएँ नहीं हैं, फिर भी जितने हैं वह कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण एवं वैविध्यपूर्ण हैं। रचनाकार के भीतर और बाहर कुछ कर गुजरने की आकांक्षा एवं प्रबल जिजीविषा ने ही कवि के रूप में स्थापित किया है। डॉ. सिंह जनवादी विचारधारा से प्रभावित होते हुए भी प्रकृति का मनोहारी वर्णन करने में तनिक भी पीछे दिखाई नहीं पड़ते हैं। प्रात:कालीन वेला का शुभारंभ कवि जनता के नमस्कार से करता है, जिसमें रचनाकार के सुबह से शाम तक का क्रियाकलाप एवं भाव सन्निहित है। 'सुबह हो जन के नमन से' कविता इसका साक्षात् उदाहरण है। यह कविता प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ समरसता के भाव को भी प्रदर्शित करता है। तभी तो रचनाकार ने 'वसुधैवकुटम्बकम्' का आह्वान किया है।

रचनाकार डॉ. राकेश कुमार सिंह एक साफ-सुथरे छवि के कवि हैं। इन्हें जातिवाद, धर्मवाद एवं क्षेत्रवाद के नाम पर देश में आराजकता एवं विभाजन पैदा करने वालों से सख्त नफरत है। कवि देश की इस वर्तमान स्थिति से तंग होकर समता का उद्घोष करते हुए कहता है - "आदमी को आने दो, आदमी के पास, मत बनाओं, बैरियर, भाषा को/जाति को और मत बाँचों वे, सन्दर्भहीन इश्तहार, धर्म और प्रान्त के, बचो। अलगाव से, किसी भेदभाव से।"

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य से समाज में संस्कार एवं सांस्कृतिक उत्थान होता है। जिस राष्ट्र का साहित्य जितना उन्नत होगा, वह राष्ट्र उतना ही अधिक विकसित एवं उन्नतशील होगा। रचनाकार डॉ. राकेश कुमार सिंह की यह कविता उसी की एक कड़ी है, जिसमें कवि ने कविता को मानव मन का तस्वीर स्वीकार करते हुए कहा है - "कविता है / तस्वीर हैं / दर्पण हैं, कोई पढ़े / तब तो! कोई देखे / तब तो!! कोई महसूस करे / तब तो ।"

कविता भावों को अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम होती है। अत: कविता को पढ़ने, देखने एवं महसूस करने के पश्चात ही उसके भाव तक पहुँचा जा सकता है। आज नारी सशक्तिकरण की बात काफी जोर पर है परंतु क्या इस पुरुष प्रधान देश में नारी को उचित अधिकार प्राप्त हो सकते हैं? आज तो पढ़ी लिखी स्त्रियाँ जो नौकरी करती हैं, उन्हें भी शादी के समय दहेज नहीं देने पर प्रताड़ित होना पड़ता है तथा मृत्यु का शिकार बनना पड़ता है। नारी को तालाब की मछलियों की भांति शोषण करने की परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है। रचनाकार ने नारी की इस दयनीय स्थिति का बड़ा ही मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है - "शौच को जाती बेटियाँ, लौटती छात्राएँ, बहनें बाजार में, द्रौपदियाँ बन जाती हैं, बन जाती हैं सीतायें।"

'हत्यारा कोई एक नहीं' शीर्षक कविता में डॉ. सिंह ने सामाजिक यथार्थ का सांगोपांग वर्णन किया है। प्रस्तुत कविता में रचनाकार ने समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, उग्रवाद एवं वैषम्य का दोषारोपण किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं थोपा है, वरन् समाज में फैले हुए इस विसंगति में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी एवं हिस्सा स्वीकार किया है, यह बात कवि की कविताओं से चरितार्थ होती है - 'सच

शेषांश पृष्ठ नं. 37 पर

वर्ग-संघर्ष के योद्धा की रूमानी कविता का संग्रह 'प्यास'

○ चितरंजन भारती

भारतीय साहित्य की परंपरा मूलत: पद्यात्मक रही है। लेखन एवं मुद्रण की सामग्रियों यथा- कागज, कलम, छपाई के साधन आदि के आविष्कार के अभाव में यह स्वाभाविक ही था कि पठन-पाठन की परंपरा मौखिक थी। अध्ययन, अध्यापन, आदि वाचन, श्रवण, मनन विधि से आगे बढ़ते थे। स्पष्ट है कि जब सब कुछ मौखिक हो, तो ऊब और नीरसता से बचने के लिए उसमें लयात्मकता की आवश्यकता रहती। और इसी लय ने तुक मिलाए, तो रस छंद, अलंकार आदि प्रस्फुटित हुए। हमारे वेद, पुराण, महाभारत आदि प्राचीन साहित्य काव्यात्मक ही तो हैं। रीतिकाल अर्थात् 1900 ई. तक ऐसे ही काव्यात्मक धारा चलती रही। बाद में कागज और मुद्रण की आसान छपाई से गद्य विधा ने जोर पकड़ा। इसके बावजूद कविता का वर्चस्व बना रहा। इसका कारण यही है कि कविताको संवेदना की भाषा, हृदय की भाषा आदि कहा जाता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि करूणा की कोख से कविता निकलती है। रत्नाकर डाकू के हृदय को एक युगल क्रौंच पक्षी के वध ने भीतर तक इतना मथ दिया कि वह 'रामायण' जैसा महाकाव्य लिख दिया और वे 'महर्षि बाल्मिकी' बन गए।

भारतीय साहित्य में काव्य की एक समृद्ध परंपरा रही है। और उसी कड़ी में हिंदी के कवि आगे रहे हैं। कबीर, सूर, जायसी, तुलसी आदि से लेकर भारतेंदु तक एक वृहत फेहरिश्त पेश की जा सकती है। लेकिन छंदबद्ध कविता ने बहुतों को परेशान भी किया। और यही कारण है कि कविता को जन्मजात प्रतिभा से भी जोड़ा जाता रहा है। इस छंदबद्धता को सर्वप्रथम महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने तोड़ा और कवियों का रास्ता प्रशस्त किया। यह वह समय था जब पंत, निराला, की तिकड़ी 'छायावाद' नामक साहित्यिक आंदोलन से जुड़ी थीं। बाद में महादेवी वर्मा की कविताओं का भी इसमें अप्रतिम योगदान रहा। और इस प्रकार मुक्त छंद कविताओं से साहित्य रच-बस गया।

बीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर में ऐसे अनेक रचनाकार थे जो मल्टीपरपज अर्थात् बहुआयामी व्यक्तित्व वाले थे। वे एक साथ संपादक, प्रकाशक, कवि, कथाकार, नाटककार, निबंधकार आदि होते थे। या यूँ कह लें कि जब जैसी जरूरत पड़ी, वे मिशनरी भाव से साहित्य सेवा के लिए अनेक क्षेत्रों तथा अनेक विधाओं में हाथ आजमा लेते थे। 'घर फूंक तमाशा' देखने वाले ऐसे मसिजीवियों की कथाओं से हम आप सभी परिचित तो हैं ही, जो प्रखर राष्ट्रवादी भाव लिए, किंतु 'वसुधैव कुटुंबकम्' की सोच रखनेवाले होते थे। भले ही उनके पास भारी भरकम डिग्री न हो, लेकिन उनका अध्ययन एवं चिंतन-मनन उच्चस्तरीय हुआ करता था। हाँ लक्ष्मी उनसे सदैव रूठी रहती थीं, क्योंकि वे उसकी परवाह ही नहीं करते थे। और इसी एक दुर्गुण के चलते भारतेंदु से प्रेमचंद तथा निराला से नागार्जुन तक असंख्य कविगण अभावग्रस्त हो काल-कवलित हुए। मुक्तिबोध तो अपनी प्रकाशित पुस्तक देखने के लिए तरस कर रह गए। उनके जीवन काल में उनका कविता-संग्रह नहीं छपा। और आज हाल यह कि कौन सी ऐसी यूनिवर्सिटी है, जिसमें मुक्तिबोध की पुस्तक कोर्स में नहीं लगी है।

यहाँ ध्यातव्य यह है कि यह मानने के बावजूद कि कवि और लेखक मूलत: स्वातंत्र्यप्रिय होते हैं, उस समय का साहित्य भी वाम और दक्षिण खेमे में बंटा था। इसमें भी वे लोग ज्यादा सुखी थे, जो सत्ताधारी दल के साथ होते थे। स्वातंत्र्योत्तर भारत के ऐसे दौर में स्व. बाल मुकुन्द 'राही' ऐसे ही एक महामानव हुए जो हमेशा आम आदमी के पक्ष में संघर्षरत रहे। मूलत: उनका व्यक्तित्व राजनीतिक था अथवा साहित्यिक, यह शोध का विषय है। उसमें भी वे वामपंथी थे अथवा दक्षिणपंथी, कहना कठिन है। अलबत्ता पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने जमकर काम किया। अनेक दैनिक तथा साप्ताहिक अखबारों में यायावरी जीवन यापन कर संपादकी की, तो 'काल स्वर' और 'वर्ग घोष' जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया। पटना के प्रख्यात् पत्रकार विकास कुमार झा अपना संस्मरण सुनाते हुए मुझसे बोले थे 'पहली रचना के प्रकाशन की खुशी को आप बेहतर समझ सकते हैं कि वह कैसी होती होगी। और मेरी पहली रचना 'काल स्वर' में छपी थी। आप अंदाजा लगा सकते हैं कि मैं तब कितना खुश था।' इस प्रकार के अनेक युवा एवं नवोदित रचनाकारों को स्व. बाल मुकुन्द राही अपनी पत्र-पत्रिकाओं में सहर्ष स्थान प्रदान किया करते थे।

अनेक कवियों के समान स्व. बाल मुकुन्द राही का भी कविता संग्रह उनके जीवन काल में नहीं छप पाया। मातृका प्रकाशन, पटना ने उनकी कुछ चुनिंदा कविताओं के संग्रह 'प्यास' का प्रकाशन किया है। उनके दिवंगत होने के 25 वर्ष बाद उनकी कविताओं को देखना एक सुखद अनुभूति है। स्व. राही की

कविताओं में 'छायावाद' की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है। प्रारंभिक कविता 'जल रहा यह दीप कैसा' पढ़ते वक्त महादेवी वर्मा के लोकप्रिय गीत 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' की याद आती है। उनकी अनेक रचनाएँ यथा 'फूल है या शूल पथ का', 'आज उर में द्वंद्व कैसा', 'उर न रो कुछ सोच पलभर', 'ज्वाला की या कलि उपवन की' आदि प्रश्नवाचक शैली में हैं। दरअसल वह दौर ही कुछ ऐसा था, जब सारा कुछ गड्ड-मड्ड था। वामपंथी विचारधारा आकर्षित तो करते थे। मगर वे आगे चलकर दक्षिणपंथी बन जाते थे। इसका मूल कारण सर्वग्रासी भारतीय संस्कृति है, जिसमें वामपंथ सिर्फ वैयक्तिक स्तर पर ही मान्य होता है। खासकर हिंदी पट्टी के लिए तो यह अनुपयुक्त सिद्ध हुआ है।

संग्रह की प्रारंभिक कविता 'जल रहा यह दीप कैसा' के माध्यम से उन्होंने प्रतीक दीप के माध्यम से यह आरोपित किया है कि दीप रूपी मनुष्य ने जो यह जाल बुने हैं वह सिर्फ प्रकाशन प्रदान करने के लिए है अथवा 'भ्रम जाल' बुना गया है। संग्रह की इन सभी कविताओं को देखने पर ऐसा लगता है, मानो ये कैशोरावस्था की कविताएँ हैं, क्योंकि इसमें सिर्फ रोमानी दृश्य हैं। गांव-गांव घूमकर क्रांति का अलग जगानेवाला, आम जनता खासकर निम्नवर्ग का सच्चा साथी तथा व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षशील योद्धा की ये प्रतिनिधि रचनाएँ नहीं हो सकतीं। प्रकाशक से उम्मीद है कि वे जब स्व. राही की अगली पुस्तक छापें, तो किसी सुविज्ञ विद्वान से संपादित कराकर ही छापें, ताकि उनकी सही तस्वीर सामने आ सके।

पुस्तक का नाम - 'प्यास'
प्रकाशक - श्री मातृका प्रिंटिंग वर्कर्स
डी.एन.दास लेन, लंगरटोली पटना (बिहार)
800 004

पृष्ठ नं. 35 का शेषांश

मानिये पर / पूरे समाज का इसमें कुछ न कुछ हिस्सा है।''

'डाली पर बैठे नटवर' शीर्षक कविता में डॉ. सिंह ने राजनेताओं पर चुभता हुआ व्यंग्य किया है। व्यंग्य यथार्थ की जमीन पर जन्म धारण करता है। यही साहित्य एवं कविता का यथार्थ भी होता है आज के नेता कालीदास की भांति जिस डाल अर्थात् जिस कुर्सी पर बैठ हैं, उसी कुर्सी को दीमक की भांति चाटते जा रहे हैं, रचनाकार के शब्दों में 'सिर रखे भाग्य देश का, भामाशा का रोल कर रहे, डालहौजी खुर्राट रहे हों, यह तो देश तुम्हारा भी है, क्यों दीमक सा चाट रहे हो।'

राजनीति की भट्टी में सद्भावना एवं सौहार्द्र के बीज भुजे जा रहे हैं। 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा है' की रट लगाने वाले राजनेता देश को राजनीति की भट्टी में धकेलते जा रहे हैं, फिर भी भारत की विकसोन्मुख होने की रट लगाए हुए फिरते हैं। कवि हृदय देश की इस मार्मिक स्थिति से मर्माहत है। भाषा, जाति, धर्म एवं प्रांत के नाम पर देश को टुकड़ा करने वाले राजनेताओं को कवि धिक्कारता है। कवि की दृष्टि में इंसानियत से बढ़कर कुछ भी नहीं है, भाषा, जाति/ धार्म की / प्रांत की सरहदों में इंसानियत बंटती है, लेकिन गर्दन-सदैव इंसान की कटती है, इंसान यह, हिंदू हो सकता है, सिख या ईसाई भी, और हो सकता है यह एक मुसलमान भी।' सचमुच इंसानियत की परिभाषा किसी जाति, धर्म, प्रांत आदि से नहीं दी जा सकती है, वरन् इसका सीधा संबंध मानव हृदय से होता है।

रचनाकार डॉ. सिंह ने राजनीति के साथ-साथ भारत माता के उन शहीद सपूतों को याद किया है जिन्होंने अपनी मातृभूमि को गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाने के लिए अपनी संपूर्ण सुख-सुविधा को त्यागकर अपने आपको न्यौछावर एवं बलिदान कर दिया था। इन शहीदों का नाम अनंतकाल तक भारतीय इतिहास एवं भारत के मानचित्र में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। कवि उन राष्ट्रभक्तों एवं भारतमाता के महान् सपूतों को स्मरण करते हुए कहता है - 'लौट गाँधी जी यहाँ पर, फिर नहीं अब आयेंगे, और नेताजी नहीं, 'आजाद फौज' बनायेंगे, भगत, विस्मिल, चंद्रशेखर, ही शहीद होते रहेंगे'

आज मनुष्य धीरे-धीरे मानवता को खाते जा रहा है। झूठ बोलना आज के मानव का मुख्य पेशा हो गया है। ऐसा क्यों न हो, क्योंकि झूठ बोलने से स्वास्थ्य जो ठीक रहता है? वर्तमान में औसत व्यक्ति अवसर के अनुसार गिरगिट की भांति अपना रंग बदलता रहता है। ऐसे व्यक्ति ही आज अपने मनोवांछित फल प्राप्त करने में सफल भी होते हैं। आज के समय की यही नियति है। ऐसे स्वार्थी एवं अवसरवादी लोगों पर कवि चुभता हुआ व्यंग्य करता हुआ कहता है - ''दस चेहरे वाला रावण भी, आज शर्मिंदा है, शर्मिंदा है पूतना भी, कई चेहरे वाली, अनेक पूतनायें, गिरगिटी चेहरों की हैं, कई टोपियाँ, रोजी और रोटी के, रंग में रंगी हुई, कभी इस बैनर की, कभी उस बैनर की, खबरें बनी हुई।''

रचनाकार डॉ. राकेश कुमार सिंह यह अच्छी तरह जानते हैं समझते हैं कि 'इंसानियत' से ही परिवार, समाज एवं राष्ट्र को नयी दिशा प्रदान की जा सकती है। जब मानव के भीतर मानवता का संचार होगा, तभी इंसानियत का उद्भव होगा, क्योंकि कौमे इंसानियत से बढ़कर कुछ नहीं होता है। यही कारण है कि कवि इंसानियत को भविष्योन्मुखी स्वीकार करता है -

''ये प्रश्न, शब्द नहीं
संस्था हैं। आंदोलन हैं
वर्तमान दायित्व जिनसे जुड़ा है
और है जिनसे जुड़ा
भविष्य इंसानियत का।''

व्याख्यता, हिन्दी विभाग, बी.एस.
कॉलेज, लोहरदगा-835302

'कलंक' (अमूल्य स्मृति-मंजूषा में मानव-मूल्यों के मोती)

○ लेखक : चरित्रपाल सिंह निम
समीक्षक - युगल किशोर प्रसाद

चर्म-चक्षुओं, की दृष्टि-क्षमता, जहाँ सीमित होती है, वहीं अंत:चक्षुओं की क्षमता अपार। महाकवि सूरदास ने, इसलिए, जितना कुछ अपने अंत:चक्षुओं से देखा-जाना, उतना चर्म चक्षु-संपन्न कोई रचनाकार शायद ही देख पाया। समीक्ष्य कृति 'कलंक-संकलन' के लेखक श्री चरित्रपाल सिंह निम ने दुर्योगवश अपने नेत्र क्या गँवाए, उनके अंत:चक्षु सूरदास की तरह खुल गए, जिसका प्रमाण उनके द्वारा प्रस्तुत तीन-रचना-कृतियों के साथ-साथ चौथी पुस्तक 'कलंक' शीर्षक, पाठकों के सामने है।

'मानसकार' ने 'गीधहिं दृष्टि अपार' लिखकर पक्षी-विशेष गीध को अपार दृष्टि-संपन्न होना सिद्ध किया है। गृधराज संप्रति सागर के इस पार बैठे, चार-सौ योजन उस पार अशोक वाटिका में बैठी म्लानमुख सीता को देख पाते हैं। क्या यह चर्मचक्षुओं से ही संभव हो पाया? मेरा मानना है कि गृधराज अपने भाई जटायु के समान अंत:दृष्टि संपन्न थे।

प्राय: प्रत्येक श्रेष्ठ रचनाकार अंत:दृष्टि-संपन्न होता है। अंत:दृष्टि संपन्नता से ही वह वस्तु के अन्तस में छिपे रहस्यों, तत्वों को देख पाता है। चर्मचक्षु तो बाहर-बाहर देख पाते हैं - केवल बाह्य सौंदर्य, किंतु उस वाह्य सौंदर्य के मूल में क्या है, वह अंत:दृष्टि-संपन्न ही देख पाता है। समीक्ष्य कृति के रचनाकार निश्चय ही अंत:दृष्टि-संपन्न हैं, जिससे वे मानवता पर लगे भेदभाव के बदनुमा दाग को देख-परख पाए।

जातीय भेद-भाव निश्चय रूप से समाजकृत है, प्रकृति या पराशक्ति-कृत नहीं। समृतिकार मनु ने इसलिए कहा है - 'जन्मना जायते शूद्र' - क्षुद्रांग से उत्पन्न सभी शूद्र ही हैं। देश के प्राचीन वैदिक-औपनिषदिक साहित्य में समता, समानता, परस्पर सौहाद्र, विश्व-बंधुत्व की बातें अंकित हैं। क्षुद्र स्वार्थवश तथाकथित कुलीनों ने उन वैदिक-औपनिषदिक उदात्त और उदार स्थापनाओं की गर्हित उद्देश्य से गलत व्याख्याएँ की और कुल विशेष में जन्म के आधार पर श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता का दावा ठोंका। ऋग्वेद के एंतरेय ब्राह्मण-खण्ड के द्रष्टा दासी इतरा के पुत्र एतरेय महीदास बहलाए गए हैं। प्रचलित वर्ण-व्यवस्था में ऐतरेय महीदास यों तो शूद्र थे, पर उन्हें ब्राह्मण माना गया और उनका लिखा ग्रंथ वेद कहलाया। समीक्ष्य कृति के रचनाकार की चिंतन-भूमि इसी आधार पर निर्मित विकसित है, जिसका साक्ष्य उनके द्वारा पुस्तक के आरंभ में प्रस्तुत प्राक्कथन का निम्नांकित अंश है - ''इतिहास के पन्नों में आज भी अंकित है कि प्राचीनतम ग्रंथों में कहीं भी भारतीय मानव को जाति के आधार पर विभाजित नहीं किया गया, किसी भी ग्रंथ में सवर्ण एवं शूद्र आदि जैसे विषमता उत्पन्न करने वाले शब्दों का स्थान नहीं...।

शीर्षक 'स्मृति की रेखाएँ' के अंतर्गत लेखक ने इस कृति को स्मृतिजन्य अनुभवों का प्रतिफलन बतलाया है - 'कलंक' कहानी संग्रह में कुछ ऐसे ही अमिट क्षणों का ताना-बाना बुना गया है। यह वाक्य इस कृति को समझने-परखने की कुंजी है। समीक्ष्य पुस्तक में लेखक के अनुसार कुल बारह कहानियाँ संकलित हैं, जिनमें परोपकारी, मानवीय गुण-संपन्न 'मेहर बाबा की यादें' का विशेष महत्त्व है। यह शीर्षक संस्मरणात्मक है, जो कहानी से अधिाक यादों का रोचक विवरण है। प्रसंगवश कहानी-विधा की विकास-यात्रा का संक्षिप्त विवरण यहाँ अपेक्षित है। 'नई कहानी' आंदोलन (सन् 1955 से 1964 ई.) के पूर्व की कहानियाँ विचारों से बनती आई हैं। कहानी-सृजन के मूल में कोई-न-कोई विचार या भाव ही रहा है, किंतु नई कहानी के प्रवक्ताओं ने 'विचार की जगह अनुभव' को कहानी-लेखन का आधार बनाया। विचार और अनुभव का अंदर स्पष्ट करते हुए कहा गया कि विचार से अनुभव अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक होता है। चूँकि विचार केंद्रित कहानियों की परिणति पूर्व निर्धारित निष्कर्षों में होती है, फलत: आगे चलकर कहानी का आधार वास्तविक जीवन न होकर 'विचार' हो जाता है, इसलिए 'नई कहानी' का कहानीकार अनुभव का प्रामाणिकता और 'भोगे हुए यथार्थ' की बात करता है। विचार उधार लिया हुआ हो सकता है, पर अनुभव तो निजी, अपना ही होता है, इसलिए कहानी में अधिक विश्वसनीयता आ जाती है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में 'कलंक' संग्रह में संकलित शीर्षकों पर विचार करने पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न शीर्षकों में प्रस्तुत रचनाओं का आधार वास्तविक जीवन अवश्य है, और 'नई कहानी' आंदोलन की कहानियों के महत्त्वपूर्ण गुण 'भोगे हुए यथार्थ' का भी चित्रण यहाँ हुआ है, किंतु रचनाओं में, मेरे विचार से, कहानीपन नहीं आ पाया है। उदाहरण के लिए संग्रह में संकलित शीर्षक 'शिवपुरी का बदलता हुआ स्वरूप' को लिया जा सकता है। इस शीर्षक में खेड़ा खुर्द गांव की विकास गाथा वर्णित है। विकास संबंधी विवरण पूरी आत्मीयता से लेखक द्वारा प्रस्तुत हुआ है, और

तत्कालीक रूप से एक ढ़ोंगी पुजारी द्वारा जातीय भेदभाव का विष घोलने का भी यथाथ्र चित्रण हुआ है, किंतु वह ब्यौरेवार विवरण से अधिक कुछ नहीं है।

कहानी विचारों से बने या अनुभव से, महत्त्वपूर्ण शिल्प हो जाता है। मेरे विचार से संग्रह में संकलित कोई शीर्षक कहानी के शिल्प में नहीं ढल पाया है। संकलित सारे शीर्षक विवरणात्मक-वर्णनात्मक हैं जिनमें कथा-तत्वों का विकास नहीं हो पाया है। लेखक निश्चय ही दूरदृष्टि-संपन्न हैं और उनका इस कृति द्वारा जातीय भेदभाव रूपी कलंक को उजागर करना है, जिसमें उन्हें यथेष्ट सफलता मिली है।

'पत्रकार का निष्पक्ष दृष्टिकोण' शीर्षक के अंतर्गत लेखक के निम्नांकित उद्‌गार - ''संसार की विभिन्न मानव-सभ्यताओं के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करें.... तो एक सत्य सामूहिक रूप में निखर कर आता है कि आदिकाल में असभ्य एवं जंगली मानव ने जब सभ्यता की ओर कदम बढ़ाया तो सर्वप्रथम अपने अतीत की वैमनस्यता को.... भुलाना अत्यंत आवश्यक समझा तथा आपसी तालमेल बढ़ाने पर अत्यधिक बल दिया - 'लेखक की सही मूल्याँकन दृष्टि का अहसास कराता है।

'संघर्ष के विभिन्न आयाम' शीर्षक के अंतर्गत विद्वान लेखक ने जाति विभाजन के पीछे कार्यशील तत्वों की पोल खोली है। की ओर कदम बढ़ाया तो सर्वप्रथम ''कुछ अधर्मी लोग इस विघटन का प्रतिनिधित्व करते हुए जाति विभाजन का अमानवीय आध्यात्मिक संविधान बना बैठे तथा उसे बढ़-चढ़ कर रंग दिया तथा हवा दी, जिसके फलस्वरूप जो व्यक्ति मानसिक रूप से सजग तथा विद्वान था, उन्हें उच्च वर्ग अथवा सवर्ण की संज्ञा दी, दूसरे पक्ष में निर्धन एवं दरिद्र असहाय जनमानस सिमट कर अछूत अथवा शूद्र के संकीर्ण घेरे की चादर में लिपट कर रह गया.'' ऐसे उदात्त सोचपरक उद्धरणों से संग्रह समृद्ध है। कुल मिलाकर, अन्य शीर्षकों के विहंगावलोकन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि रचना का सामाजिक, साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्त्व है। वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत संकलित सारे शीर्षक लेखक के सामाजिक मानवीय दृष्टिकोण का साक्ष्य तो देते ही हैं, सोच की विसंगतियों से उत्पन्न तनावग्रस्त समाज का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करते हैं। जातीय भेदभाव सामाजिक बिखराव का कारण भी है और उत्पन्न संकट उसका परिणाम भी।

संग्रह का प्रत्येक शीर्षक वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत हुआ है। पात्रों का चारित्रिक विकास किसी शीर्षक में नहीं हो पाया है वो कहानी का मुख्य तत्व है, लेखक प्रवक्ता की तरह सब कुछ स्वयं कहता है।

शीर्षकों का स्वरूप निबंधात्मक है। संकलित सारे शीर्षक कहानी की बजाय निबंधात्मक का आभास देते हैं। भाषा प्रवाहमयी और स्तरीय है। प्राय: हर शीर्षक में लोक-तत्वों का समावेश हुआ है। लेखक की चेतना जनोन्मुखी है और दृष्टि यथार्थपरक। उन्होंने बारह शीर्षकों के अंतर्गत स्मृतिजन्य निजी अनुभवों को सफल वाणी दी है, इसमें कोई संदेह नहीं। तमाम शीर्षकों का स्पष्ट उद्देश्य भी है, किंतु कथा-तत्वों का सर्वथा अभाव है।

यह संकलन इस बात का भी प्रमाण है कि दृष्टि-विकलांगता (नेत्रहीनता) लेखन-उद्देश्य का बाधक नहीं बनती, दृढ़ इच्छाशक्ति हर अक्षमता को क्षमता में बदल देती है। नेत्र हीन सूरदास की काव्य-रचनाओं की तरह श्री निम द्वारा प्रस्तुत यह गद्य-कृति पठनीय, माननीय और संग्रहणीय है।

इस संग्रह की प्रस्तुति द्वारा विद्वान लेखक ने जातीय भेदभाव से उत्पन्न बुराइयों की स्पष्टता से रेखांकित कर अपना नागरिक-सामाजिक दायित्व भी बखूबी निभाया है। उद्देश्य की दृष्टि से यह प्रस्तुति सफल ही नहीं, प्रेरक और हमारी आँखें खोलने वाली हैं। रसायन विज्ञानी होने के बावजूद वे हिंदी भाषा में इतना कुछ सार्थक लिख रहे हैं, यह स्पष्टीकरण और अनुकरणीय है। इस संग्रह में सभ्यता-संस्कृति संबंधी ढेर सारी जानकारियाँ सुरक्षित हैं। यह कृति स्मृतियों की स्वर्ण-मंजूषा है, जिसमें जीवन-मूल्यों के अमूल्य मोती संग्रहीत हैं।

इस महनीय प्रस्तुति के लिए विद्वान लेखक को ढेर सारा साधुवाद।

- न्यूविग्रहपुर, बिहारी पथ,
पटना 800001 (मीठापुर बस
पड़ाव से सटे पूरब)
दूरभाष : 0612-6457512
'साधना कुटीर', मुरगावां, नालंदा
(बिहार)

''विचार दृष्टि'' के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके जुलाई-सितम्बर 2009 के प्रकाशन पर हमारी शुभकामनाएँ **विनोद कुमार**

मै. सन्तोष सीमेन्ट खगौल रोड, मीठापुर, पटना-1

नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में स्त्री

○ उदय कुमार
ब्रह्मपुत्र छात्रावास, जे.एन.यू., नई दिल्ली ।

नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था भूमण्डलीकरण और उदारवाद की देन है, जिसमें वर्षों से चली आ रही हमारी संस्कृति और सामाजिक मूल्य परिवर्तित हुए हैं। इस नई व्यवस्था में स्त्रियां बाजारवाद के केंद्र में आ गयी हैं। वे अब अधिक मुखर हो गई हैं, स्त्री-पुरुष संबंधों में परिवर्तन हुआ है। भूमण्डलीकरण की अवधारणा कोई नई नहीं है। हमारे यहां पहले से ही वसुधैव कुटंबकम और यत्र विश्वम्भवत्यकेनीडम' की अवधारणा चलती आ रही है किंतु आज का भूमण्डलीकरण हमारी जड़ को उखाड़ने की कोशिश कर रही है। महात्मा गांधी ने कहा था कि सभी देशों की संस्कृतियों की हवाएं हमारे यहां आए किंतु मैं यह नहीं चाहता कि कोई हवा हमारी जड़ों को उखाड़ दे। रमेश उपाध्याय ने भूमण्डलीकरण के बारे में लिखा है - हमारा देश बाकी दुनिया से कटा हुआ कोई अलग-थलग भूखण्ड कभी नहीं रहा है। हम दूसरे देशों में जाते रहे हैं और दूसरे देश के लोग हमारे यहां आते रहे हैं...। अत: विश्वीकरण हमारे लिए कोई नयी या डरावनी चीज नहीं है। लेकिन हम अपना विश्वीकरण समता, न्याय और विश्व बंधुत्व के आधार पर चाहते हैं। यह बात न तो हमें भूलनी चाहिए और न उन्हें,जो अपनी शर्तों पर हमारा विश्वीकरण चाहते हैं।''।

इससे स्पष्ट है कि विश्वीकरण की धारणा जो हमारे यहां रही है वह समता न्याय और विश्वबंधुत्व के आधार रही है किंतु आज जिस भूमंडलीकरण या विश्वीकरण की बात की जाती है वह पहले की धारणा से भिन्न है। आज का भूमण्डलीकरण पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का बदला हुआ रूप हैं इसके लिए नए सिद्धांत गढ़े गए हैं, अमेरिका और यूरोपीय देशों के द्वारा। उत्तरआधुनिकता की जो विचार-धारा दी गई है उसके पीछे पूंजीवादी शक्तियां ही कार्य कर रही हैं'। उत्तरआधुनिकतावादियों का कहना है कि 'इतिहास का अंत हो गया' या हर घटना महज एक पाठ है। इसका अभिप्राय यह है कि तीसरी दुनिया के देश अपनी पराधीनता के इतिहास को भूल जाएं और उनके लिए अपना बाजार खोल दें, उनकी चीजों का इस्तेमाल करें। आज सचमुच हम इनके सुझाव मार्ग पर चलने को तत्पर हो गए हैं। अर्थशास्त्री दिलीप एस.स्वामी उदारीकरण और विश्वकीरण को साम्राज्यवादी हथकंडे मानते हैं और कहते हैं कि ' 'इनके नाम पर जो हुआ है, वह यही है कि भारत ने इन वैश्विक बाजार शक्तियों के आगे घुटने टेक दिए हैं, जिन पर बहुराष्ट्रीय नियमों का अधिपत्य है। उनका निष्कर्ष है कि भारत पर किसी का अधिपत्य नहीं हुआ है, फिर भी उसका पुनरूपनिवेशीकरण हो गया है।''2

भूमण्डलीकरण एक ऐसी नीति है जिसकी कुछ शाक्तिशाली शक्तियों द्वारा आक्रामक रूप से वकालत की जाती है और हम लोगों के गले में जबर्दस्ती उतारने का प्रयास किया जाता है। प्रसिद्ध बुद्धिजीवी ए.बी. बर्द्धन के अनुसार 'भूमण्डलीकरण वास्तव में नए उदारवाद की संतति हो सकता हैं और अपने अभिभावक की भांति यह भी एक नीति है जिसे साम्राज्यवादी देशों द्वारा आगे बढ़ाया जाता है और वह तीसरी दुनिया के देशों के खिलाफ निर्दिष्ट है जिन्हें वह अपना शिकार बनाता है। तीन बहनें- उदारवाद, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण साथ-साथ चलती हैं।'3

भूमंडलीकरण के इस दौर में आज हर कहीं सांस्कृतिक संकट का रोना रोया जा रहा है। यह स्थिति खुद अमेरिका में भी उत्पन्न हो गई है। आज जो संस्कृति विकसित हो रही है उसे संड़क छाप संस्कृति माना जा रहा है। शास्त्रीय संस्कृति को अब लोग भूल रहे हैं। दूसरी ओर लोक संस्कृति की बात भी अब पुरानी हो चली है। लोक संस्कृति एवं शास्त्रीय संस्कृति के बीच का मैत्रीपूर्ण संवाद भी अब खत्म हो गया। अब जो संस्कृति पनपी है उसे 'नो ब्राउ कल्चर' कहा जाता है। मनोहर श्याम जोशी का मानना है कि ''इस प्रकार की संस्कृति लोकप्रियता की गवाही पर अपने को लोक रूचि से जुड़ी आधुनिक लोक संस्कृति ठहराती है लेकिन जो अर्थ और काम को सबसे जीवन मूल्य मानने वाले मुक्तमंडी के चाकरों की बुद्धि बल्कि कंप्यूटरों से उपजी होती है।''4 पर अफसोस की बात यह है कि जो सड़क छाप संस्कृति उत्पन्न हुई है वह अपने-अपने देशों के अनुसार उत्पन्न नहीं हुई है। इसका अवसर बहुराष्ट्रीय कंपनियां नहीं देतीं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिनमें अधिकतर अमेरिकी हैं, अमेरिकी ढंग की सड़क छाप संस्कृति के भूमंडलीकरण में जुट गई हैं। मास मीडिया का बुल्डोजर भूमण्डल में सांस्कृतिक विविधाताओं को देखते ही देखते मिट्टी में मिलाने लगा है।

भूमण्डलीकरण के द्वारा जो नई आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था कायम हो रही है उसमें मीडिया की अहम भूमिका है। मीडिया का उपयोग लोगों को वस्तुओं से परिचित कराने में नहीं होता बल्कि उन वस्तुओं की जरूरतों को अनिवार्य बताने के लिए होता है। पहले जहां माना जाता था कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है वहीं अब यह धारणा बन गई है कि आविष्कार आवश्यकता की जननी है। मीडिया हमारे भीतर नई वस्तुओं की आकांक्षा जगाने का माधयम है। अगर हमने अमुक क्रीम नहीं लगाई तो हमारी त्वचा न गोरी हो सकती है और न ही मुलायम। राजेंद्र

यादव के शब्दों में कहें तो ''सारी प्रसाधन सामग्री का जोर गोरा बनाने पर हैं और यह क्रीम पाउडर बेचने के साथ-साथ गोरी नस्ल को संसार की सर्वश्रेष्ठ नस्ल के रूप में स्वीकार करने की प्रछन्न मजबूरी पैदा करती है।''5 विश्व सुंदरी बनने की ललक आज गांवों एवं कस्बों की लड़कियों तक पहुंच गयी है। आज कार रखना मध्यवर्ग के लिए स्टेटस सिंबोल बन गया है जिसके पूरे न होने पर वह बेचैन हो जाता है। भौतिकता ने आदमी को इतना विवश कर दिया है कि उसकी पूर्ति न होने से आदमी कई कुंठाओं से घिर जाता है और तनाव का शिकार हो जाता है। कहना उचित होगा कि यह संस्कृति ही बेचैन संस्कृति है जिसमें हर कोई असंतुष्ट है और कहता है ''दिल मांगे मोर'' फिर उपभोक्ताओं के चिंताग्रस्त होकर बीमार पड़ने पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दवाएं हैं न जो चुटकियों में सरदर्द मिटाने की बातें करती हैं। नई सामाजिक आर्थिक विश्व व्यवस्था में बाजार की भूमिका के बारे में देवेंद्र चौबे का यह कथन - ''बिल्कुल सही प्रतीत होता है, जहां वे कहते हैं, 'मुश्किल यही है कि बाजार केंद्रित निर्मित हो रही इस नई व्यवस्था में सच कहना उतना ही गलत है जितना कि झूठ को झूठ। यह सामाजिक यथार्थ आज उन संकेतों को लेकर निर्मित हो रहा है जहां सच को झूठ और झूठ को सच में तब्दील करने की वैधानिक व्यवस्था की जाती है। उत्पादित वस्तुओं का विज्ञापन इस प्रकार किया जाता है कि अब ग्राहकों के लिए केवल वही सही लगे और इसके अतिरिक्त उनके पास कोई दूसरा विकल्प भी न रहे।''6

भूमण्डलीकृत विश्व व्यवस्था ने स्त्री समाज में आज आमूल परिवर्तन ला दी है। स्त्रियां पहले से चली आ रही परंपराओं एवं मूल्यों को तोड़ती हैं एवं अपने लिए एक 'स्पेस' की मांग करती है। लड़कियां अब ज्यादा दिखने और बोलने लगी हैं, वजह है कि उन्हें भाषा मिली है और अभिव्यक्ति के माधयम के रूप में मीडिया भी। टी.वी. के आगमन से गांव-देहात की लड़कियां भी उनका अनुकरण करती हैं। अब उनका रहन-सहन बदला है। प्रोफेशनल, बाहर काम काज करने वाली स्त्रियों की चाल-ढाल, भाषा शैली बदली हुई है। कोई जमाना था जब लड़कियां हेमा मालिनी, जीनत अमान आदि को अपना रोल मॉडल मानती थीं। किंतु अब वे शबाना आजमी, नंदिता दास, वंदना शिवा, सुनिता नारायण, मेधा पाटेकर, अरूंधती राय आदि को अपना रोल मॉडेल चुनती हैं। ये महिलाएं मीडिया प्रसूत हैं जिन्हें देखकर आम लड़कियां भी वैसा ही बनना चाहती हैं। नई औरत आज समाज के नियमों में हस्तक्षेप करती हैं। आज छोटे बड़े पर्दे पर अनेक लड़कियां हैं जो हर तरह की भूमिकाएं करती हैं चाहे वह भूमिका खलनायिका की ही क्यों न हो। स्त्रियां आज ज्यादा प्रोफेशनल हो रही हैं। आज हर क्षेत्र में वे अपना स्थान बना रही हैं, चाहे आकाश की ऊँचाई हो या फिर जमीन। नए ग्लोबल समाज में स्त्रियों की आवाज को मीडिया मजबूती प्रदान करती है एवं उनके उत्पीड़न के खिलाफ लड़ती भी हैं। पहले स्त्रियां चुप रहने को अपना मूल्य मानती थीं आज वे बोलने को अपना मूल्य मानती हैं। साइबर कैफे में स्त्रियां ग्लोबल विश्व में विचरण भी करती हैं जिससे उनके मनोजगत का विस्तार होता है।

मीडिया ने जहां स्त्रियों को एक पहचान दी है वहीं मीडिया पूंजीवाद के कुत्सित रूप का समर्थन भी करती है। मीडिया स्त्रियों को जिस प्रकार से आकर्षक बनना सिखाती है एवं जिस प्रकार से देह की संस्कृति फैला रही है वह पूंजीवाद की पुरुषवादी मानसिकता को ही दर्शाता है। अपने माल को स्त्री-देह के माध्यम से पूंजीवाद हमारे सामने परोसता है। विश्व सुंदरी और ब्रह्माण्ड सुंदरी का चुना जाना बाजारवाद को सफलीभूत करना ही है। भूमण्डलीकरण ने स्त्री को आज बाजारी वस्तु बना कर रख दिया है। प्रभा खेतान ने स्त्री पर भूमण्डलीकरण के कारण पड़नेवाले प्रभाव के बारे में लिखा है - मैं समझती हूं कि भूमण्डलीकरण ने औरत के सामने कुछ नयी संभावनाओं के द्वार तो खोले हैं मगर दूसरी तरु उसके लिए नयी गुलामियां भी खड़ी कर दी हैं। इन पराधीनताओं के खिलाफ संघर्ष करते हुए औरत को भूमण्डलीकरण के जरिए मिली गुंजाइशों का लाभ उठाना है।''-पर सवाल पैदा होता है कि जिस बाजार का संचालन पुरुष करते हों उस बाजार व्यवस्था में स्त्री अपने मानवीय अधिकारों को प्राप्त कर सकेगी? क्या बाजार को अपने हित में नियोजित कर पाएगी? आज स्त्री जगत को इस बिंदु पर भी सोचने की आवश्यकता हैं।

भूमण्डलीकरण के इस युग में महानगरों में अकेली रहने वाली कामकाजी स्त्रियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार जीवन साथी बनने लायक सही व्यक्ति न मिलने के कारण 33 प्रतिशत महिलाएं अकेले रहना पसंद करती हैं। जबकि 17 प्रतिशत कैरियर बनाने के लिए ऐसा करती हैं। 55 प्रतिशत अकेली महिलाएं आजादी को महत्वपूर्ण मानती हैं। (आंकड़े: सहारा समय, साप्ताहिकी, 20 मई 2005 से साभार)। समाज अब अकेली रहने वाली स्त्रियों को महत्व देने लगा है। विवाहित महिलाओं में लगभग एक तिहाई को अपने पति से समझौते करने पड़ते हैं। कुछ महिलाओं का मानना है कि पुरुषों को खूबसूरत और कमजोर स्त्री आकर्षित करती हैं। ऐसे अनुभव के कारण स्त्रियां अकेले रहना पसंद करती हैं। किंतु सोचने वाली बात यह है कि स्त्रियां जब बूढ़ी हो जाएंगी और शरीर थक जाएगा ऐसे में कहां जाएंगी? भारतीय परंपरा में परिवार की अवधाारणा इसीलिए अपने आप में विशिष्ट मानी जाती है। यहां बुढ़ापे की स्थिति में परिवार वालों का साथ होता है किंतु

शेषांश पृष्ठ नं. 43 पर

सामाजिक समस्या का राजनीतिक हल

○ सिद्धेश्वर

आजादी के 62 वर्ष गुजरने के बाद भी सामाजिक समस्याओं का हल इसलिए नहीं निकल पाया है क्योंकि राजनीतिक दल इसके हल के लिए दिलचस्पी नहीं लेते। राजनीतिक दलों के द्वारा केवल आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के ही समाधान के लिए प्रयास होते रहे हैं और वे सामाजिक सच्चाई से मुँह मोड़ते रहे हैं। लोकतंत्र में सबसे ताकतवर और संगठित मोर्चा होते हुए भी राजनीतिक दलों ने जाति-व्यवस्था पर चोट नहीं की, बल्कि सच तो यह है कि वे अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए उसे आज तक बढ़ावा देते रहे हैं, केवल समाज के दो वर्ग-गरीब और अमीर को ही मानना राजनीति के लिए भूल है। समाज में जात-पांत है और एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से भेदभाव करते हैं। इसमें तनिक संदेह नहीं। इस असलियत को मानते और समझते हुए सामाजिक समस्याओं का हल ढूँढा जाना चाहिए।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने और पिछड़ी एवं दलित जातियों द्वारा सत्ता में शिरकत करने के बाद समाज के लोग जातीय आधार पर संगठित होने लगे हैं। यहाँ तक कि जातीय आधार पर राजनीतिक दलों का गठन भी हो रहा है। ऐसा होने पर जाति-व्यवस्था पर चोट करने की बजाय राजनीतिक दल जातीय आधार पर गोलबंद होते ज्यादा दिखाई दे रहे हैं। इस संदर्भ में मैं कहना चाहूँगा कि यदि प्रारंभ से ही इस सामाजिक समस्या का राजनीतिक निदान निकालने का प्रयास किया गया होता, तो अब तक जातीय आधार पर गोलबंदी के लिए जगह नहीं रह पाती। यही कारण है कि सामाजिक विषमता की खाई घटने की बजाय बढ़ती जा रही है और लोगों में एक-दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष, विद्रोह, नफरत और बदले की भावना कम नहीं हो पा रही है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि राजनीतिक दल इस सामाजिक समस्या को भी अपनी चेतना का विषय बनाएँ तथा शिक्षा में एकरूपता, अनिवार्य शिक्षा, सामाजिक समरसता, समतामूलक समाज और राजनीतिक दलों के अंदर लोकतांत्रिक-व्यवस्था कायम की जाए। इसके अतिरिक्त अत्यधिक धन और भोग सामग्री एकत्रित करने के माहौल का अंत करना अत्यावश्यक है। साथ ही पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं के निदान के लिए संयुक्त परिवार प्रथा की ओर लौटने की प्रवृत्ति भी बनानी होगी।

जब हम सामाजिक समस्याओं के राजनीतिक हल की बात करते हैं, तो एक विचित्र-सा चित्र हमारे सामने उभरकर आता है। यह बात ठीक है कि पिछले कुछ वर्षों से हमने विश्व पटल पर अपनी पहचान बनानी शुरू की है किंतु अभी तक हमने राष्ट्रीय दृष्टि नहीं अपनायी है। मगर लंबी दौड़ का घोड़ा बनने के लिए बहुत सोच-समझकर एक सुनियोजित राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाते हुए कार्य करने की आवश्यकता है। साथ ही सामाजिक समस्याओं के हल के लिए राजनीतिक स्थायित्व भी होना चाहिए। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में हमारे यहाँ एक अजीब राजनीतिक नजारा बन गया है। मजहब, जाति, भाषा, क्षेत्रवाद और राजनीति का अपराधीकरण हम पर हावी होता जा रहा है। हालांकि ऐसा नहीं कि यह सब पहले नहीं था पर आज पानी सिर से ऊपर आने वाली स्थिति है।

अभी आपने देखा कि 15वीं लोकसभा के चुनाव की आहट के साथ ही कांग्रेस नीत 'संप्रग' तथा भाजपा नीत 'राजग' और तथाकथित तीसरे मोर्चों में शामिल होने वाली पार्टियों की विचारधारा बिखर गई और प्राय: सभी दलों ने अपना राग अलापना प्रारंभ कर दिया। केवल सत्ता हासिल करने के लिए एक साथ आने को तैयार हो गए। प्राय: सभी दलों की अपने राज्यों तक अपने को सीमित कर अपनी दृष्टि एक क्षेत्रविशेष से ऊपर राष्ट्रीय स्तर तक नहीं जा पाती। यही कारण है कि न तो वे राष्ट्रीय हित की बात सोच पाते हैं और न सामाजिक हित की। बस येन-केन-प्रकारेण वे सत्ता हासिल करना अपना लक्ष्य बना लेते हैं। विडंबना यह है कि इन दलों और उनके नेताओं का एक क्षेत्र विशेष के बाहर न तो कोई अस्तित्व है और न राष्ट्रीय दृष्टि । ये सभी नेता अपने-अपने राज्यों से आगे जनाधार नहीं रखते और क्षेत्रीय भावना भड़काकर अपने राज्य में ज्यादा-से-ज्यादा सीटें हासिल करना ही इनका उद्देश्य हो जाता है और इस देश की जनता भी इनके बहकावे में आकर उनके सुर में सुर मिलाने लगती हैं।

ऐसी स्थिति में हम यह सोचने को मजबूर हैं कि क्षेत्रीयता, जातियता, भाषाई तथा मजहबी भावना को भड़काकर राजनीतिक दल कभी भी सामाजिक समस्याओं का निदान नहीं निकाल सकते। अतएव इसके लिए राजनीतिक स्थायित्व जरूरी है। यदि भारतीय लोकतंत्र को स्वस्थ और राष्ट्र को सबल बनाना है, तो सामाजिक समस्याओं का हल निकालना होगा जिसमें सभी नागरिकों के साथ ही शासन के सभी अंगों तथा राजनीतिक दलों को अपनी भूमिका पहचानकर उनका यथोचित निर्वहन करना होगा। इसके साथ ही राजनीति को अपराधमुक्त किए बगैर हम कल्याणकारी समाज की कल्पना और

रचना नहीं कर सकते। और सबसे बड़ी बात यह है कि बिना सुशासन के सामाजिक समस्याओं का राजनीतिक हल मुश्किल है। राजनीति में शुचिता, पारदर्शिता और ईमानदारी व भ्रष्टाचार मुक्त शासन प्रणाली के रास्ते ही सुशासन का मार्ग प्रशस्त होगा। सुशासन लाने के लिए न जाने संसद ने कितने कानून पास किए। भ्रष्टाचार मिटाने, प्रशासनिक सुधार, राजनीतिक व सामाजिक जागरूकता जैसे न जाने कितने प्रपंच रचे गए, लेकिन सुशासन लाने की रफ्तार उतनी तेज नहीं, जितनी वाकई होनी चाहिए।

दरअसल, राजनीति आज शुद्ध रूप से एक व्यवसाय बन गई है। ऐसी स्थिति में विचारणीय प्रश्न यह है कि राजनीतिक व सार्वजनिक जीवन में जिस शुचिता की बात की जा रही है, उसे शिखर से संचालित करने वाले क्या उन उसूलों व मूल्यों में यकीन रखते हैं जिससे सुशासन की संरचना गढ़ी जा सकती है। इस संदर्भ में एक और बात का विलगौर है कि आज हर काम के लिए राजनेताओं व सरकार को दोष देने का फैशन सा चल निकला है। लेकिन क्या हमने अपने गिरेबान में झांककर कभी देखने का प्रयास किया कि हममें से कितने लोग हैं, जो हर चौक-चौराहे अथवा सभा-संगोष्ठियों में व एसएमएस से अपनी राय तो दे देते हैं, मगर वोट डालने के लिए मतदान बूथ तक जाने की जहमत नहीं उठाते। केवल सुबह से शाम तक राजनीति में पनप रही अपसंस्कृति को कोसकर जुबानी जमा खर्च हम देशवासी खासकर प्रबुद्धजन अवश्य करते हैं।

जबकि आवश्यकता इस बात की है कि ऐसा कोई रास्ता सुझाया जाए जिससे इस व्यवस्था में सुधार आए और निष्ठावान व समर्पित लोगों को सही जगहों पर बिठाकर शुचिता व सुशासन का नया मार्ग खुले जिसमें हर वर्ग के पीड़ितों व वंचितों के आंसू पोछे जा सकें। इसके लिए हमें अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करनी होंगी और हम सतर्क और समझ वाले लोगों को कंधे से कंधा, सुर से सुर और कदम से कदम मिलाकर लंबा रास्ता तय करने का बीड़ा आज से ही उठा लेना होगा, क्योंकि सतर्क और समझदार नागरिक ही परिपक्व जनतंत्र के आधार होते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार, समाज और शिक्षा-जगत इन सबों के द्वारा समाज-सुधार तथा सामाजिक समस्याओं का हल निकालने की कोई कारगर नीति तैयार करने की भी जरूरत है।

'दृष्टि' यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-110092

पृष्ठ नं. 41 का शेषांश

वैश्वीकरण ने परिवार को भी तोड़कर रख दिया है और हम अशिप्त जीवन जीने के लिए मजबूर हो रहे हैं।

बहुराष्ट्रीय बाजार व्यवस्था के कारण स्त्रियों का वस्तु की तरह बिकना और उसके श्रम का वस्तुकरण शुरु हुआ है। प्रभा खेतान मानती हैं कि-''नई पीढ़ी बाजार व्यवस्था में स्त्री का यौन वस्तुकरण और राष्ट्रेत्तर यौन बाजार में स्त्री का जींस की भांति बिकना, वास्तव में भारतीय जनतंत्र में एक शोषणकारी परिणाम के रूप में उभरा है।''8 नई बाजार व्यवस्था, उदारवाद और वैश्वीकरण का स्त्री के ऊपर प्रभाव के बारे में चित्रा मुद्गल कहती हैं कि ''इसके वैश्विक स्तर पर सौंदर्य के प्रतीक के तौर पर प्रतिष्ठित करने का चलन बढ़ा है।''9 इसका खतरनाक पक्ष वह यह मानती हैं कि यह सब स्त्री को कहीं न कहीं देह की मुक्ति देने की बजाए बाजार देह पर ही लौटा कर ला रहा है । भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए देह शोषण का कारण रही है। अत: उन्हें लगता है कि पहले देह की समस्या को सुलझाना ही उचित होगा। देह अब हमारे समाज में पहेली नहीं रही। स्त्रियां खुलकर इस पर चर्चा करती हैं, इस पर लिखती हैं। पर पुरुष समाज मर्यादा की बात कहकर स्त्रियों की देह गाथा को नकारना शुरू कर दिया एवं अश्लील करार दिया। कितनी विडंबना है, जहां पुरुषवादी समाज स्त्री देह के पीछे लगा रहा आज वही देह सामने आ गयी तो पुरुष परेशान हो उठा। उनके लेखन को अश्लील कहने लगा। यह प्रवृत्ति आज की स्त्री जीवन से जुड़ी है अब औरतें अकेली रहना पसंद करती हैं एवं मातृत्व को शोषण का पर्याय समझती हैं। बाजारवाद और भूमण्डलीकरण ने पारंपरिक संस्थाओं मसलन विवाह, परिवार, स्त्रीत्व आदि पर जमकर प्रहार किया है। भारतीय समाज में समलैंगिकता को कभी भी स्वीकार नहीं किया गया है पर आज पश्चिमीकरण की हवा ने इसे बहस के केंद्र में लाकर खड़ा कर देता है। मीडिया इससे जुड़ी तमाम जानकारियां देती है किंतु अपना निर्णय नहीं देता। वह भारतीय संस्कृति के विखण्डन पर मौन है।

संदर्भ:-

1. आज का पूंजीवाद और उनका स्तर आधुनिकतावाद : रमेश उपाध्याय, पृ.19
2. संदर्भ के लिए देखें वही, पृ.22
3. आर्थिक भूमण्डलीकरण, मिथक या वास्तविकता : अचिन वनायक के प्रस्तावना से
4. समयांतर, मार्च 2005 में मनोहर श्याम जोशी के लेख ''ग्लोबल गांव में सांस्कृतिक संकट'' से
5. समयांतर, मार्च 2005 में राजेंद्र यादव के लेख 'मगर रास्ता है' से
6. आजकल, मई 2005 में देवेंद्र चौबे के लेख ''नए समाज का यथार्थ और कहानी की दुनिया'' से
7. समयांतर, मार्च 2005 में प्रभा खेतान के लेख स्त्री का वैश्वीकरण से
8. वही
9. समयांतर, मार्च 2005 में अरुण नारायण के लेख ''उदारीकरण का संस्कृति पर प्रभाव से''।

भारतीय राजनीति में सामाजिक संचेतना और डॉ. अम्बेडकर

○ सिद्धेश्वर

अकेले का नाम है व्यक्ति और अनेक व्यक्तियों के समूह का नाम है समाज, जिसका तात्पर्य है - एक वह संहति, जो व्यक्ति सापेक्ष रहकर अपने अस्तित्व को बनाए रखती है। व्यक्ति और समाज को विभक्त कर देखना उचित नहीं है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि समाज-व्यवस्था के परिवर्तन का चिंतन विगत दो शताब्दियों की देन है। इसी शताब्दी में बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने समाज-व्यवस्था परिवर्तन की रूढ़ धारणा को झकझोरा और नए चिंतन की दिशा प्रदर्शित की। सर्वप्रथम उन्होंने दलितों में आत्म-सम्मान का भाव जगाया और शोषण के खिलाफ लड़ने की चिनगारियाँ उत्पन्न कीं। उन्होंने तीव्रता से यह महसूस किया कि हमारे समाज में हजारों सालों से दलितों पर अत्याचार होते आए हैं। तकरीबन तभी से, जब से समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णों में बांटा गया। इस समाज-विभाजन में शूद्रों को सबसे निचले पायदान पर रखे जाने की वजह से उन्हें आज तक जलालत की जिंदगी झेलनी पड़ रही है। बेहद कठिन जीवन-संघर्षों से गुजरे डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने आहत सिंह की तरह पूरे साहस और तर्कों के साथ, इस पूरे शोषण तंत्र को चुनौती दी और साफ-साफ कहा कि किसी सभ्य समाज में यह गैर-बराबरी बर्दाश्त नहीं की जा सकती।

ऐसा भी नहीं कि डॉ. अम्बेडकर के पहले दलितों के प्रति होने वाले अत्याचारों और शोषण को किसी ने समझा नहीं। महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे संत तथा बहुत से ऐसे समाज सुधारक इस देश में हुए जिन्होंने 'जात-पात पूछे नहीं कोई' का उद्घोष करके समाज में बराबरी और समानता का भाव पैदा करना चाहा। बहुत पहले जाएँ तो भगवान बुद्ध के जीवन और उपदेशों में इसकी मिसाल मिल जाती है। उन्होंने जात-पात के बंधनों को तोड़कर मनुष्य के श्रेष्ठ कर्मों, विचारों और साधना को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने सीख दी कि कोई मनुष्य अपने आचरण से ही बड़ा होता है, जात-पात के झमेले निरर्थक हैं। आगे चलकर गांधीजी ने दलितों की पीड़ा को महसूस किया और उनके उत्थान के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया। अस्पृश्यता को वे पाप समझते थे तथा इसका कड़े शब्दों में उन्होंने विरोध किया। अस्पृश्यों के मंदिर-प्रवेश के वे पक्षपाती थे और इसके लिए कई जगह उन्हें प्रबलता से अपनी बातों पर जोर देते हुए, सत्याग्रह करना पड़ा। उन्होंने दूसरे जाति-वर्णों के लोगों के हृदय में दलितों के लिए संवेदना और सहानुभूति जगाने का काम किया।

इन सबके बावजूद देखा जाए, तो इन समाज-सुधारकों ने दूसरी जातियों के मन में करुणा या सहानुभूति जाग्रत करने की कोशिश तो की, मगर यह एक प्रकार से 'दया' ही थी। इससे उनके 'बेचारेपन' में कोई कमी नहीं आई थी। ऐसी सहानुभूति हम उन्हीं के प्रति रखते हैं, जिन्हें पहले से कमजोर समझते हैं। उन्हें अपने बराबर तो नहीं ही समझते। डॉ. अम्बेडकर ही वह पहले समाज-सुधारक व सामाजिक संचेतना से युक्त व्यक्ति हुए, जिन्होंने दलितों के भीतर आत्मबोध की चिनगारियाँ भरीं। बुझी हुई राख जैसे उनके दिलों में आस्था की किरणें जगाईं और उनमें आत्मबल जगाया। उन्हें अपने प्रति किए जा रहे हजारों सालों के शोषण और अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलंद करना सिखाया। उन्होंने दलितों के बीच शिक्षा, संगठन और संघर्ष का नारा बुलंद किया, क्योंकि डॉ. अम्बेडकर स्वयं दलित थे और दलित होने की वजह से उन्हें पूरी यातना और तकलीफें झेलनी पड़ी थीं। उन्हें लगातार अपमानों के एक ऐसे चक्रव्यूह से गुजरना पड़ा था कि इसी की वजह से इस शोषणतंत्र के खिलाफ उनकी लड़ाई देखते-देखते करोड़ों शोषितों और दलितों की लड़ाई में बदल गई। डॉ भीमराव अम्बेडकर के जुझारु व्यक्तित्व के कारण ही दलितों में नया उत्साह जगा। उन्हें अब लगा कि उन्हें किसी की दया या सहानुभूति की जरूरत नहीं है, बल्कि उनमें यह भावना प्रबलतम रूप से सामने आने लगी कि वे भी दूसरे मनुष्यों के बराबर हैं। यही वह एक क्रांतिकारी परिवर्तन - बिंदु है जिसकी वजह से दलित समाज में अपने संपूर्ण मनुष्य होने का अहसास। इतिहास में यह एक नए परिवर्तनकारी दौर का जुड़ना था। इसी अहसास के चलते उनके दिलों में अपने दु:ख, पीड़ा, शोषण और अपने नारकीय जीवन के लिए जिम्मेदार लोगों के प्रति आक्रोश भड़क गया और इस आक्रोश एवं गुस्से ने विद्रोह की शक्ल अख्तियार कर ली और वह विद्रोह आज भी कायम है, क्योंकि समाज के लोगों के मन में सामाजिक समरसता और सद्भाव नहीं के बराबर जाग पाया है, भले ही कुछ कम हो गया हो।

अतएव समय की माँग है कि हम सब समाज के सजग नागरिक जो अपने को संवेदनशील साहित्यकार व पत्रकार एवं प्रबुद्धजन कहते हैं, सारे भेद और सीमाओं से परे होकर संपूर्ण समाज को शांति, सुरक्षा, सम्मान, सुख और खुशहाली के लिए मार्गदर्शन करें - तभी डा. बी. आर. अम्बेडकर का सपना पूरा होगा।

विष्णु प्रभाकर : 'आवारा-मसीहा' जिनका पर्याय बना

○ सिद्धेश्वर

हिंदी के गद्य साहित्य की लगभग हर विधा को समृद्ध करने वाले वयोवृद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर जी को सर्वाधिक लोकप्रियता शरतचंद्र चटोपाध्याय के जीवन पर आधारित उनकी लिखी जीवनी 'आवारा मसीहा' से मिली, जो 1974 में प्रकाशित हुई। शरतचंद्र के व्यक्तित्व-कृतित्व पर रोचक रचनाएँ प्रस्तुत कर विष्णु प्रभाकर जी ने हिंदी साहित्य की जीवनी विधा को 'आवारा मसीहा' से न केवल महत्त्वपूर्ण बनाया, बल्कि 'आवारा मसीहा' उनका पर्याय भी बन गया। इसके पहले हिंदी में सिर्फ दो महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ - अमृतराय लिखित प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' और डॉ. राम विलास शर्मा लिखित 'निराला की साहित्य साधाना, भाग-एक' प्रकाशित हुई थी। 'आवारा मसीहा' लिखने के लिए उन्हें बारह साल बाहर रहना पड़ा।

21 जून, सन् 1912 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के मीरपुर गांव में जन्मे विष्णु प्रभाकर ने बचपन में ही हरियाणा के हिसार में आकर यहाँ के चंदूलाल एंग्लो वैदिक हाई स्कूल में नामांकन कराया और 1929 में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद मई 1929 से जून 1944 तक गवर्नमेंट कैटल फार्म में उन्होंने दफ्तरी और उसके बाद लिपिक की नौकरी की। नौकरी की अवधि में ही उन्होंने 'हिंदी प्रभाकर', 'संस्कृत विशारद' और स्नातक कला की डिग्री प्राप्त की। करीब पंद्रह वर्षों तक नौकरी करने के बाद विष्णु प्रभाकर जी सन् 1944 में ही हिसार छोड़कर दिल्ली चले आए और यहाँ आकर 'अखिल भरतीय आयुर्वेद महामंडल' में लेखाकार के पद पर दो वर्षों तक नौकरी करने के बाद वे आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र पर बतौर नाटक निदेशक काम करने लगे। मार्च, 1957 में निदेशक के पद से भी उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र लेखन-कार्य में जुट गए यह जानते हुए भी कि हिंदी में सिर्फ लेखन के बल पर जीवन-यापना काफी कठिन है।

हालांकि विष्णु प्रभाकर जी ने हिसार में रहने की अवधि से ही लिखना प्रारंभ कर दिया था और इनकी पहली रचना 'बाल सखा' में पत्र के तौर पर छपी थी, किंतु लाहौर से प्रकाशित 'हिंदी मिलाप' के नवंबर 1931 अंक में इनकी पहली कहानी 'दिवाली के दिन' प्रकाशित हुई और नियमित लेखन सन् 1934 से शुरू हुआ और तब से प्रभाकर जी लगातार लिखते रहे। अब तक इनकं चौबीस कहानी संग्रह, बारह नाटक, सत्रह जीवनी एवं संस्मरण, दस बाल एकांकी, एक बाल नाटक, तीन बाल जीवनियाँ, तेरह बाल कहानी संग्रह, दो लघु कथा संग्रह और उनतीस विविध पुस्तकें प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा इनके आठ उपन्यास, तीन खंडों में संपूर्ण निबंध, छह खंडों में संपूर्ण नाटक और दो खंडों में संपूर्ण संस्मरण छप चुके हैं।

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर के रचना संसार पर जब हमारी नजर जाती है, तो हम पाते हैं कि उसका दायरा बहुत व्यापक है। 'आवारा मसीहा' के अतिरिक्त इनकी जिन कृतियों को लोगों ने सराहा उनमें 'अर्धनारीश्वर', 'सत्ता के आर-पार', 'एक आसमान के नीचे', 'धरती अब भी घूम रही है', 'पुल टूटने से पहले', 'निशिकांत', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'एक और कुंती', 'पाप का घड़ा', 'अमर शहीद भगत सिंह' 'कोई तो', 'गान्धार की भिक्षुणी', 'हंसते निर्झर दहकती भट्टी', 'हमसफर मिलते रहे', 'स्वराज्य की कहानी', 'पंखहीन', 'मुक्त गगन में' आदि प्रमुख हैं।

दिल्ली प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अध्यक्ष रह चुके विष्णु प्रभाकर जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार, पद्म अलंकरण सहित अनेक पुरस्कार और सम्मानों से नवाजा गया। विष्णु जी के महाप्रयाण के कुछ ही माह पूर्व साहित्यिक मासिक पत्रिका 'पाखी' ने प्रथम 'शब्द साधक शिखर सम्मान' प्रदान करने के साथ पत्रिका के प्रवेशांक में साहित्य के इस अप्रतिम साधक के अवदान पर विशेष खंड प्रकाशित कर जीते जी इनकी महत्ता रेखांकित की थी।

'जीने के लिए सौ वर्ष की उम्र छोटी है' कहने वाले 97 वर्षीय विष्णु प्रभाकर का लंबी बीमारी के बाद विगत 10 अप्रैल 2009 को शुक्रवार की रात एक बजे, नई दिल्ली के एक निजी अस्पताल में निधन हो गया। साहित्य को तरोताजा करने वाले साहित्यकार विष्णु प्रभाकर जी भले ही आज हमारे बीच नहीं रहे, पर लोगों के सुख-दुःख में झांकती उनकी 'पंखहीन' जैसी कृतियाँ हमेशा साथ रहेंगी। वे अपने पीछे दो पुत्र और दो पुत्रियों के अतिरिक्त हजारों-हजार साहित्य-बिरादरी को छोड़ गए। उनकी पत्नी का निधन काफी पहले हो चुका था। विष्णु प्रभाकर के पुत्र अतुल प्रभाकर ने बताया कि उनके पिता विष्णु प्रभाकर ने अपनी वसीयत में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), नई दिल्ली को अंगदान करने की इच्छा व्यक्त की थी। इसलिए उनका अंतिम संस्कार नहीं कर उनके पार्थिव शरीर को एम्स को सौंप दिया गया था।

दरअसल, हर व्यक्ति अपने पीछे एक परंपरा छोड़ जाता है। विष्णु जी ने

भी अपने पीछे एक स्वच्छ और आदर्श परंपरा छोड़ी है। सरल-सहज स्वभाव के विष्णु जी न केवल कृति 'आवारा मसीहा' के लिए, बल्कि एक साहित्यिक मसीहा के रूप में सदैव याद किए जाएँगे, क्योंकि उन्होंने लोगों का अपार स्नेह अर्जित किया और बदले में अपार स्नेह दिया। मैं भी उन सौभाग्यशाली लोगों में हूँ जिसे उनसे मिलने और उन्हें सुनने का मौका अनेक बार मिला। कलम के मजदूर की तरह सदैव लिखने वाले विष्णु प्रभाकर जी के देहावसान के बाद आज जब मैं उनका संस्मरण लिखने बैठा हूँ तो मेरी आँखे गिली हो चुकी हैं और स्नेह के दो आँसू कागज के पन्नों पर टपक पड़े हैं। दिल्ली में रहने का मुझे यह लाभ तो अवश्य मिला कि समय-समय पर उनके मधुर वचन सुनने को मिले और आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं तो उनके न रहने पर एक रिक्तता का एहसास हो रहा है। ऐसा लगता है कि हमारे बीच से कोई आडंबरहीन बुजुर्ग व्यक्तित्व हमारी आँखों से ओझल हो गया सदा-सदा के लिए। सच मानिए, सरलता और सहजता ही उनका सबसे बड़ा गुण था और उनकी एक और सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह प्रत्येक प्रश्न पर सहज भाव से विचार करते थे। उन्होंने एक गरिमामय जीवन जिया। दिल्ली का कॉफी हाउस उनकी कर्मस्थली थी जहाँ वे प्रतिदिन शाम को पहुँच जाते थे। उनका न तो कोई अपना दल और न ही कोई गुट था, इसलिए वे वाद-विवाद से परे रहे। गाँधीवादी विचारधारा के पोषक विष्णु जी आर्य समाज में आस्था रखते थे, पर आर्य समाजी नहीं थे। वे प्रगतिशील विचारों से जुड़े रहे।

उनके दरवाजे हमेशा सबके लिए खुले रहे, क्योंकि वे किसी खेमे से बंधे नहीं। उनके पास प्रशंसकों के जो भी पत्र आते थे, वह उनका उत्तर अवश्य देते थे। उनकी बहुत-सी शिकायतें रहती थीं, पर उन्हें वे कभी व्यक्त नहीं करते थे। अंतिम दिनों से कुछ वर्ष पहले विष्णु जी किसी माफिया द्वारा अपना मकान हथियाए जाने को लेकर कुछ परेशान रहे, फिर भी उनके चेहरे पर कभी कटुता नहीं आई। मगर इस मामले को पूर्व-साहित्यकार सांसद स्व. शंकरदयाल सिंह ने राज्य सभा में उठाकर तत्कालीन गृहमंत्री का जब ध्यान आकृष्ट किया, तो सभापति ने उन्हें आदेश दिया था कि वे पुलिस के उच्चाधिकारी के माध्यम से वस्तुस्थिति का पता लगाएँ और इसकी रपट संसद में प्रस्तुत करें। इस पर अधिकारी जब विष्णु जी के घर गए और उनसे पूछा कि उन्हें क्या कष्ट है, तो उन्होंने अधिकारी से विनम्रतापूर्वक कह दिया कि उन्हें न कोई कष्ट है और न कोई शिकायत। इस तरह मामला संसद में आया और समाप्त हो गया। हालांकि बाद में उक्त माफिया ने विष्णु जी का मकान खाली कर दिया। यह बात सही है कि उनका शुरूआती जीवन कठिन था और उन्होंने गरीबी और अभाव में अपनी पढ़ाई-लिखाई की, किंतु इसके बावजूद उनमें न तो कड़वाहट आई और न ही असुरक्षा की भावना। आखिर तभी तो माफिया द्वारा उनके मकान पर कब्जा किए जाने के बावजूद पुलिस अधिकारी से वह शिकायत नहीं कर पाए। यह उनके सरल और सहज स्वभाव का उत्कृष्ट उदाहरण है।

विष्णु प्रभाकर जी का मानना था कि भारतीय संस्कृति अपने नाना रूपों में पूरे देश में व्याप्त है। एक ओर जहाँ प्राचीन काल में यहाँ ऋषियों-मुनियों की मंत्रध्वनि गूँजी, वहीं दूसरी ओर मध्यकाल में वही ध्वनि स्थापत्य और मूर्तिकला के रूप में विकसित हुई। वास्तव में प्रकृति ही प्रेरणा रही है इन कलाओं की। हिमालय की अपनी यात्राओं में अनेक दृश्य विष्णु प्रभाकर जी ने देखे। सन् 1966 में जब चंबल के डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया था, तो उस समय विष्णु प्रभाकर भी जब उनके साथ सात दिन जेल में रहकर चंबल के बीहड़ों में घूमने निकले थे, तो उन्हें वहाँ वीराने में एक अद्‌भुत शिव मंदिर के दर्शन हुए। विष्णु जी अपने एवं निबंध में लिखते हैं कि सास-बहू के अभिलेख से ऐसा मालूम होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास चंबल घाटी में कच्छपघात राजा 'कीर्तिराज' ने सुहानियाँ में एक शिव मंदिर का निर्माण कराया था अपनी रानी ककनावती की इच्छा से। मुरैना से तकरीबन 35 किलोमीटर की दूरी पर आसन नदी के पश्चिमी किनारे बसे सुहानियाँ गांव में स्थित इस ककनमठ मंदिर के गर्भगृह का वर्णन करते हुए विष्णु जी लिखते हैं कि इसकी दीवारें अंदर से साधारण होकर भी बाहर से नाना रूप में मूर्तियों और अलंकृत पट्टिकाओं से सुसज्जित है। यह मंदिर सिंहपानीय कला और स्थापत्य की श्रेष्ठता का प्रमाण है।

ईश्वर के बारे में विष्णु प्रभाकर जी का मत रहा कि ईश्वर अगर है, तो वह तो एक-सा ही होना चाहिए - ईश्वर अलग-अलग कैसे हो सकता है - चाहे वह हिंदू का भगवान हो, मुसलमान का अल्लाह हो या फिर ईसाई का गॉड हो। इस संदर्भ में विष्णु जी रामकृष्ण परमहंस की एक कथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रामकृष्ण जी के पास एक शिष्य आया, तो उसने कहा कि 'गुरुदेव! आज आपके बगीचे में हमने हरे रंग का गिरगिट देखा, दूसरा शिष्य आया, तो उसने कहा कि मैंने लाल रंग का गिरगिट देखा, तीसरा शिष्य आया तो उसने कहा कि उसने पीले रंग का गिरगिट देखा, किसी ने नीले रंग का गिरगिट देखा तो इतने सारे गिरगिट यहाँ पर कैसे आ गए। तो रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि गिरगिट तो एक ही है, लेकिन वह रंग बदलता है, इसी तरह ईश्वर तो एक ही है, वह रंग-रूप बदल लेता है।

यदि हम इस सत्य को मान लें तो झगड़े-फसाद का, दंगों का कोई कारण ही न रह जाए।

साहित्य के संबंध में विष्णु जी का मत था कि शब्द जब सम से मिलता है तो संगीत बन जाता है और शब्द जब सह के साथ मिलता है तो साहित्य बन जाता है। तो शब्द तो कहीं जाने वाला है नहीं। सह की भावना, सम की भावना तो बराबर रहेगी।

गौर वर्ण, स्वस्थ काठी पर सफेद कुर्ता और पायजामा के साथ सिर पर सदैव गांधी टोपी धारण करने वाले सुदर्शन व्यक्तित्व के विष्णु जी में एक अजीब किस्म की तेजोदीप्ति थी। सरल, सहज किंतु विलक्षण व्यक्तित्व के विष्णु जी पत्र-लेखन कला के अवसान के वक्त भी रोज लगभग साठ पत्र बोलकर लिखवाते थे। खुद न लिख पाने की अवस्था में भी पत्रों का उत्तर देना उनके लिए मानसिक विवशता थी। विष्णु जी जिज्ञासु तो थे ही, अपनी जानकारियों को बांटना भी जानते थे। साहित्य के स्वरूप के बारे में उन्होंने एक पंक्ति में कहा था कि अच्छा आदमी ही अच्छा साहित्यकार हो सकता है। उनके द्वारा पद्मभूषण लौटाने की घोषणा करना एक बात को स्पष्ट करती ही है कि अपने साहित्यिक कद को लेकर न तो उन्हें कोई गुमान था और न कोई गलतफहमी। देश के सर्वाधिक लोकप्रिय राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उनसे व्यक्तिगत रूप से माफी मांगी थी।

विष्णु जी अपने जीवन में दो काम और करना चाहते थे जो वह कर न सके। एक तो अपनी आत्मकथा का चौथा खण्ड लिखना और दूसरा उन पत्रों का संकलन, जो उन्हें दुनिया भर में फैले उनके पाठकों ने समय-समय पर लिखे। काश! जिंदगी ने उन्हें थोड़ा और वक्त दिया होता, तो उनकी यह अभिलाषा भी पूरी हो गई होती।

विष्णु प्रभाकर जी को हिंदी के महान् गद्यशिल्पियों की उस पीढ़ी का आखिरी उत्तराधिकारी माना जा सकता है जिसने आजादी के पहले लिखना शुरू किया और जिनके लेखन में आजादी के आंदोलन के आदर्श और आजाद भारत के यथार्थ की धूप-छांव का मेल है। कहना नहीं होगा कि विष्णु प्रभाकर जी हिंदी साहित्य के एक गौरवशाली युग के प्रतिनिधि थे और उनका लेखन उनके और उनके युग के रचनात्मक आदर्शों की हमें याद दिलाता रहेगा, क्योंकि उनका रचनाधर्म अत्यंत अविस्मरणीय है। अतएव विष्णु प्रभाकर जी का नाम साहित्याकाश में ध्रुवतारे की तरह मानिंद रहेगा।

त्रिमूर्ति अलंकार

त्रिमूर्ति पैलेस (रुपक सिनेमा के पूरब)

बाकरगंज, पटना-800004

दूरभाष : 2662837

आधुनिक आभूषणों के निर्माता,
नए डिजाइन,
शुद्ध सोने-चाँदी तथा हीरे के
गहनों
का प्रमुख प्रतिष्ठान

सुरलोक, धारा या पाताल में हैं, वे बोस कहाँ - किस हाल में हैं

○ आर. डी. गुप्ता

''सुरलोक, धारा या पाताल में हैं, वे बोस कहाँ - किस हाल में हैं''

दुनिया में लोग आते हैं, और चले जाते हैं, उन्हीं लोगों में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनकी छाप या याद हमारे हृदयों में ऐसी अमिट होती है कि विश्व का समूचा पानी भी उसे धो या मिटा नहीं सकता। उन्हीं लोगों में से एक हैं नेताजी सुभाष चंद्र बोस जिनकी 18.8.1945 वाली विमान यात्रा आज भी रहस्य के घेरे में फंसी पड़ी है। बीसवीं शताब्दी का शायद ही कोई अन्य नेता होगा जिसका जीवन उन जैसे झंझावती और नाटकीय प्रसंगों से भरा हो। जब गाँधी जी अहिंसा का गरुड़ ध्वज लहरा रहे थे, तभी उग्र विचारधारा का समर्थक यह सुभाष चंद्र बोस राष्ट्रीय आंदोलन के क्षितिज पर उदित था। उलझन और फिसलन भरे कगारों पर भले ही विश्व भर में उन्हें दौड़ते रहना पड़ा, किंतु स्वाभिमान के कवच-कुण्डल को उन्होंने कदापि नि:स्तेज नहीं होने दिया।

हिटलर, मुसोलिनी एवं स्टालिन जैसे तानाशाहों से उनका संपर्क होने के कारण कुछ लोगों को यह भी संदेह था कि कहीं वे देश के भविष्य को इन तानाशाहों के हाथ गिरवी रखने की चाल तो नहीं चल रहे? इतिहास साक्षी है कि इम्फाल और कोहिमा के मोर्चों पर जापानी सेना और आजाद हिंद फौज ने मिलकर कितने ही बार माऊंट बैटन के छक्के छुड़ा दिए थे, पर हिरोशिमा और नागासाकी की तबाही के बाद जापान को आत्म-समर्पण करना पड़ा और तब कई वर्षों तक वह (जापान) अमेरिका के पाँवों तले कराहता रहा।

आज भी कुछ लोग उन्हें मृत मानते हैं जबकि अधिकांश लोगों का यह मानना है कि बिना किसी ठोस सबूत के उन्हें मृत घोषित कर देना भी न्यायोचित नहीं। उनका कहना है कि न तो 18.8. 1945 को वे फार्मोसा स्थित ताईपेई (ताईवान) के हवाई अड्डे पर ही गये और न ही उस दिन वहाँ कोई विमान दुर्घटना हुई थी। उनका विचार है कि 17. 8.1945 को साईगौन (वियतनाम) में ही वो भूमिगत होकर रूस पहुँच गए थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गोरी सरकार ने नेताजी को अपना सबसे खतरनाक भारतीय विरोधी मानकर यद्यपि उनको प्रेसीडेंसी जेल में बंद कर दिया था तथापि जेल में भी वे भारत को मुक्ति के ही उपाय सोचते हुए विभिन्न देशों के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का मंथन कर रहे थे। वे जानते थे कि इटली के एकीकरण के लिए गैराबाल्डी के आस्ट्रिया के शत्रुओं से और आयरलैंड को स्वतंत्र कराने के लिए डी. वलेरा ने अमेरिका की मदद ली थी। सुनियात ने भी चीन में साम्राज्यवादी वंश को नष्ट करने हेतु जापान का सहयोग प्राप्त किया था जबकि लेनिन ने भी जारशाही को परास्त करने के लिए जर्मनी से सहयोग लेने में कोई संकोच नहीं किया था। नेताजी का भी यही विचार था कि बिना किसी विदेशी मदद के भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता, अत: विदेशी समर्थन जुटाने हेतु विगत दशक में उन्होंने लगभग आधे विश्व की यात्रा की थी। उन्होंने इटालियन नेता मुसोलिनी से, चाकोस्लोविया में एडुअर्डो वेन्स से, आयरिश नेता वलेरा से, जापान नेता ओहासी से, चीन के माओत्से तुग तथा फ्रांस, स्टिजरलैंड, पोलैंड एवं आस्ट्रिया आदि में जाकर वहाँ के शीर्ष नेताओं से वार्ता की थी। विदेशी सहायता प्राप्त करने की परिकल्पना में उन्होंने सोवियत संघ को ही प्राथमिकता दी थी, क्योंकि वही राष्ट्र तब भारतीय सीमाओं के निकट सशक्त था।

वे जानते थे कि ब्रिटिश सरकार उन्हें महायुद्ध की समाप्ति तक कदापि रिहा नहीं करेगी, इसलिए अपनी जल्द रिहाई के लिए उन्हेंने एक चाल चली। 29 नवंबर 1940 को उन्होंने यह घोषित कर दिया कि आमरण अनशन करके देश के लिए वे जेल में ही शहीद होना चाहते हैं। ब्रिटिश सरकार जानती थी कि यदि उनकी हिरासत में नेताजी मर गए, तो भारत मे एक ऐसा तूफान खड़ा हो जाएगा जिसका सामना कर पाना उसके लिए कठिन हो जाएगा, इसलिए अनशन के सातवें दिन ही उसने नेताजी को जेल से तो रिहा कर दिया, मगर उनके अपने घर पर ही उनको नजर बंद कर दिया गया। घर को सशस्त्र पहरेदार दिन-रात घेरे रहते थे। नेताजी की योजनाएँ तो इतनी सुव्यवस्थित होती थी कि स्वयं उनका दायाँ हाथ भी यह नहीं जान पाता था कि उनका बायाँ हाथ अब क्या कर रहा है? अपनी भावी योजना के लिए उन्होंने मियाँ अकबर शाह नौशेरा को चुना, सीमांत कबीलों से जिनका घनिष्ठ संपर्क था। नेताजी ने उनको कोलकाता बुलाकर अफगानिस्तान जाने की अपनी योजना बनाते हुए आवश्यक व्यवस्था करने के निदेश दिए।

परिवारजनों को छोड़कर उन्होंने लगभग सभी से मिलना-जुलना बंद कर दिया। उनके भोजन की थाली भी दरवाजे के पर्दे के पास रखकर लकड़ी से भीतर सरका दी जाती थी और भोजन करने के बाद वे भी उसे पर्दे के नीचे से ही बाहर कर देते थे। कमरे में बंद रहकर उन्होंने अपनी दाढ़ी-मूछ इस कदर बढ़ा ली कि कोई भी अब उनको नहीं पहचान सकता था। 16 जनवरी, 1941 की कोहरा भरी रात में आवश्यक सामान सहित लखनवी मौलवी के भेस में वे पूर्व नियोजितानुसार भतीजे शिशिर बोस की जर्मन वान्डरर कार में बैठकर अन्य भतीजे अशोक बोस

के धनबादवाले निवास स्थान पर पहुँचे। 17 जनवरी को गोमोह स्टेशन पर दोनों भतीजों को वापस भेजकर 19 जनवरी को पेशावर में वे भगतराम, अकबर शाह और आबाद खाँ आदि क्रांतिकारी साथियों से मिले। पठानी लिबास में ही 31 जनवरी को वे काबुल पहुँचे जबकि इधर यथा योजनानुसार उनके परिवारजनों ने भी उन्हें लापता घोषित कर दिया।

इटालियन दूतावास के मंत्री श्री अल्बर्टो और श्री फिल्गर के प्रयास से जर्मन राजदूत शैलनबर्न ने उनको अफगानिस्तान से जर्मनी जाने के लिए रूस से होकर गुजरने की अनुमति दिला दी और इस प्रकार 3 अप्रैल को वे बर्लिन पहुँचे। जर्मन सरकार ने एक राष्ट्राध्यक्ष की भाँति उनका भव्य स्वागत किया। 2 नवंबर 1941 को नेताजी ने जर्मनी में बसे रास बिहारी बोस और वहाँ के भारतीयों के साथ मिलकर आजाद हिंद सेंटर की स्थापना की। उसी माह बर्लिन से अपने देशवासियों के नाम प्रसारित कर रेड़ियो संदेश में उन्होंने वहाँ होने की अपनी उपस्थिति की सूचना भी दे दी। 19 मई, 1942 को उन्होंने एडोल्फ हिटलर से मुलाकात की और फिर दोनों मित्रों द्वारा नेताजी की भावी योजनाओं को तर्कों की तेज कैंची से काटा-छाँटा गया।

सुमात्रा के उत्तर से संबाग, पेनांग, मनीला और फारमोसा होते हुए 13 मई, 1943 को वे टोकियो पहुँचे। अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करते हुए यहाँ से वे 2 जुलाई 1943 को सिंगापुर आये। उन्हीं दिनों 6 अगस्त को हिरोशिमा पर और 9 अगस्त को नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर अमेरिका ने जापान के दो बड़े नगर ध्वस्त कर दिए। इस विकराल विभीषिका को देखकर मानव तो क्या, मानवता भी काँप उठी। 12 अगस्त, 1945 को जबकि नेताजी सरंबान में थे, उनको नगीशी ने जापानी संदेश देते हुए यह सूचित किया कि युद्ध समाप्त होने वाला है और जापानियों ने आत्म समर्पण करने का निर्णय ले लिया है, अत: साकाई से बात करके आप साईगौन छोड़कर तत्काल रूस या जहाँ - कहीं भी उचित समझें, चले जाएँ तो अच्छा रहेगा। जापान जो कि आजाद हिंद फौज को हथियार दे रहा था, उसने 15 अगस्त, 1945 को मित्र राष्ट्रों के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। किंतु नेताजी का इरादा तो ब्रिटिश सरकार के साथ सशस्त्र संघर्ष जारी रखना था, इसलिए 16 अगस्त को ही आजाद हिंद फौज के प्रमुख एस.ए. अय्यर, देवनाथ दास, प्रीतम सिंह गुलजारा सिंह, हबीबुर्रहमान , आबिद हसन और जापानी जनरल एस. इसौदा जैसे प्रमुखों से भावी योजना पर उन्होंने विचार-विमर्श किया और अपने उक्त साथियों के साथ वे साईगौन पहुँच गये। उसी सायं 5.00 बजे कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ साईगैन से वे तोरेन के लिए रवाना हो गये; क्योंकि यहीं होकर उन्हें रूस जाना था।

बताया जाता है कि 18.8.1945 को तोरेन से विमान दोपहर 2.30 बजे ताईवान के ताईपेई हवाई अड्डे पर ईंधन लेने के लिए उतरा और वहाँ से यह 2.36 बजे उड़ा, लेकिन तत्काल एक जोरदार ध माके के साथ यह हवाई अड्डे पर ही दुर्घटना ग्रस्त हो गया जिसमें कि नेताजी बुरी तरह से जल गए। मूल्यवान आभूषणों एवं आवश्यक दस्तावेजों से भरे नेताजी के गज भर लम्बे चारों ब्रीफकेसों का सारा सामान एयर फील्ड में बिखर गया जिसे कि जापानी सुरक्षा अधिकारियों की देखरेख में एकत्रित किया गया। घायल नेताजी को नोन मोन सैनिक अस्पताल ले जाया गया, किंतु चिकित्सकों के भरसक प्रयास भी उन्हें नहीं बचा सके। दो दिन बाद कर्नल हबीबुर्रहमान की उपस्थिति में ताईपेई के सरकारी शवदाह गृह में उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया और उनकी भस्मी को टोकियो के रेकाँजी मंदिर में रख दिया गया जो कि आज भी वहीं रखी हुई हैं। उनके अधजले जवाहरात इम्पीरियल जनरल अस्पताल में जमा कर दिए गए जिन्हें बाद में नेहरू सरकार द्वारा भारत में मंगवा लिया गया। 23 अगस्त, 1945 को टोकियो रेड़ियो ने समाचार प्रसारित किया कि 18 अगस्त को विमान दुर्घटना में नेताजी सुभाष चंद्र बोस का देहावसान हो गया। क्योंकि यह समाचार 8 दिन बाद प्रसारित किया गया था, कुछ लोगों ने इसे सच माना जबकि अधिकांश ने एकदम झूठ क्योंकि निम्न वर्णित ढेर सारे प्रश्न और जानकारी यह दर्शाती है कि कम से कम 18.8. 1945 वाली उस विमान दुर्घटना में तो नेताजी नहीं मरे।

उनका कहना है कि कथित मृत्यु संबंधी चित्रों में नेताजी की लाश को कम्बल से ढका हुआ क्यों दिखाया गया? उनकी अनढकी लाश और चेहरे का चित्र क्यों नहीं लिया गया? संदेह की सूँई इस ओर भी घूमती है कि यदि उनकी मृत्यु अस्पताल में हुई थी तो वहाँ उनकी भर्ती का, उनका देहावसान हो जाने पर उनको डिस्चार्ज किये जाने का या अंतिम संस्कार किये जाने संबंधी वहाँ कोई रिकार्ड या प्रमाणपत्र क्यों नहीं है? इसकी माँग किए जाने पर 1956 में शाहनवाज समिति के समक्ष जापान सरकार ने जो प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया, उसका जापानी से अंग्रेजी में अनुवाद कराने पर पता चला कि वह नेताजी का न होकर किसी जापानी सैनिक का था, जिसका नाम ओकारो ओचिरा था जो कि हृदयाघात के कारण 19.8.1945 को सायं 4.00 बजे ताईपेई में मरा था, न कि 18 अगस्त को। उसकी जन्म तिथि भी 9.4.1900 थी जबकि नेताजी की 23. 1.1897 थी। उसकी सैनिक संख्या 2113 दर्शाई गई थी। स्पष्ट है कि उक्त विवरण नेताजी से कहीं भी मेल नहीं खाता। यह बात संदेह को और भी पुख्ता कर देती है कि इतने जग विख्यात व्यक्ति का अंत्येष्टि का न तो कोई चित्र ही लिया गया और न ही हबीबुर्रहमान के अतिरिक्त वहाँ कोई

मौजूद था। गवाहों की रिपोर्ट भी एकमत नहीं थी। किसी ने नेताजी की सीट एकदम आगे, किसी ने पीछे, किसी ने कोने में तो किसी ने ठीक बीच में बताई। कर्नल हबीर्बुरहमान के अनुसार दुर्घटना जब समतल स्थान पर हुई थी, तो फिर विमान के नष्ट-भ्रष्ट हिस्से ऊबड़-खाबड़ और पथरीली भूमि पर कैसे पहुँचे जैसा कि चित्रों में दर्शाया गया है। ताकाशाकी के अनुसार विमान हवाई अड्डे के सीमा क्षेत्र में ही दुर्घटना ग्रस्त हुआ था जबकि कर्नल रहमान के अनुसार हवाई अड्डे से 2 मील की दूरी पर तथा ले0 नोनागाफी के अनुसार विमानतल पर ही दुर्घटनाग्रस्त हुआ था। मेजर तारोकानो के अनुसार नेताजी एकदम नग्नावस्था में थे जबकि आर्दली एम. काजुओ ने बताया कि नेताजी सेना अधिकारी की वर्दी में थे।

डॉ. योशिमी का कहना था कि नेताजी के शरीर पर कोई भी चोट नहीं थी जबकि कर्नल रहमान के अनुसार उनके सिर में हुए 4 इंची गहरे घाव से तेजी से खून बह रहा था। डॉ. योशिमी कभी तो कहते हैं कि उन्होंने नेताजी के शरीर से 200 सी.सी. रक्त निकालकर 400 सी.सी. नया रक्त चढ़ाया था जबकि कभी वे कहते हैं कि उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। उनकी मृत्यु का समय भी सायं 3.00 बजे से 4.00 बजे के बीच, कभी रात्रि 8.00 बजे तो कभी 12.00 बजे बताया गया है। कभी बताया गया है कि उनका शव 19 अगस्त की सुबह ले जाया गया था तो कभी 20 अगस्त की सुबह। उनके दाह-संस्कार की तिथि भी कभी 20 अगस्त तो कभी 22 अगस्त बताई गई है। कर्नल रहमान कभी तो उनका गणतव्य स्थान टोकियो को कभी रूस को मानते हैं। इस घटना के बारे में कर्नल रहमान को नेताजी के परिवार जनों को या साईगौन में रुके हुए नेताजी के विश्वासी उक्त वर्णित पाँचों व्यक्तियों में से किसी को भी बताना ही चाहिए था, पर उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। जब श्री अय्यर को इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा कि मैं नेताजी का शव अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ पर मौसम खराब होने का बहाना बनाकर, मुझे ताईपेई की बजाय विमान से ताईचू ले जाया गया। उनका मानना है कि यदि उन्हें ताईपेई ले जाया गया तो कहानी की वास्तविकता तत्काल सामने आ जाती है। नाका मुरा के अनुसार विमान को कोई क्षति नहीं हुई थी जबकि नानोगाकी एवं मेजर ताराकोनों ने बताया कि विमान के दो टुकड़े हो गए थे। यह भी कैसे संयोग की बात है कि नेताजी, जनरल शिदैई और चालक दल के सदस्य जो कि रूस जा रहे थे, उन्हें तो मृत दिखा दिया गया जबकि उसी विमान के वे व्यक्ति जो कि रूस नहीं जा रहे थे, वे सभी जीवित बचे रहे। ऐसी योजना तो शायद विधाता के दिमाग में भी नहीं आ सकती।

कर्नल रहमान, जो कि नेताजी के अकेले भारतीय सहयात्री थे, उनके बयानों में भी एकरूपता नहीं है। उनके पहले बयान के अनुसार नेताजी ने अपना अंतिम संदेश अस्पताल में दिया था जबकि चौथे बयान में उन्होंने बताया कि राष्ट्र के नाम अपना अंतिम संदेश उन्होंने दुर्घटना स्थल पर दिया था। अपने दूसरे बयान में उन्होंने बताया कि दुर्घटना के होते ही वे स्वयं भी बेहोश हो गये थे जबकि तीसरे बयान में उन्होंने बताया कि वे बोहोश ही नहीं हुए थे। दुर्घटना के होते ही वे बेहोश हो गए थे नेताजी का दुर्घटना स्थल वाला उनका अंतिम संदेश उन्होंने कैसे सुना? उन्होंने यह भी बताया कि नेताजी के मरने के समय वे उनके पास ही थे जबकि अन्य पांचों गवाहों का कहना था कि उन्होंने वहाँ न नेताजी को और न ही उनका शव देखा था। दोमई के अनुसार तो नेताजी की मृत्यु जापान में हुई थी और वहीं उनका दाह-संस्कार भी हुआ था जबकि हबीर्बुरहमान के अनुसार नेताजी की मृत्यु और दाह-संस्कार तैहाकू में हुआ। उक्त कथनों में भिन्नता क्यों है? नोनागाकी कभी तो कहते हैं कि तुरेन में नेताजी जनरल शिदैई के साथ होटल में ठहरे थे जबकि कभी उन्होंने नेताजी के ठहरने का स्थान फौजी बैरक तो कभी एयर पोर्ट बताया है। उन्होंने अपने पहले बयान में बताया कि विमान बाईं ओर गिरा जबकि अगले बयान में उन्होंने दाईं ओर गिरने की बात की है। ताकाहाशी का कहना है कि न तो विमान बाईं ओर और न ही दाईं ओर गिरा, बल्कि वह तो पेट के बल जमीन पर उतर कर स्वाभाविक स्थिति में खड़ा रहा। नोनागाकी कभी तो कहते हैं कि उन्होंने नेताजी के शरीर या कपड़ों में कोई आग नहीं देखी जबकि अगले बयान में उन्होंने बताया कि नेताजी के जलते हुए कपड़े हबीर्बुरहमान ने नही बल्कि मैंने उतारे थे। हबीर्बुरहमान ने बताया कि नोनमोन अस्पताल पहुँचते ही नेताजी को आपरेशन थियेटर ले जाया गया था जबकि डॉ. याशिमी, जिन्होंने नेताजी का इलाज किया था, उनका कहना था कि नेताजी को आपरेशन थियेटर में बिल्कुल भी नहीं ले जाया गया था।

हबीर्बुरहमान का कहना था कि नेताजी का ऊनी स्वैटर नहीं जला था जबकि उनकी शर्ट में लगी आग से नेताजी का ऊपरी शरीर बुरी तरह से झुलस गया था और मैंने नेताजी की शर्ट में लगी आग अपने हाथों से बुझाई थी। यह कैसे संभव है कि बाहर पहना हुआ स्वेटर बिल्कुल नहीं जले जबकि उसके नीचे पहनी हुई शर्ट पूरी तरह जल जाये। उन्होंने अपने हाथों से यदि शर्ट की आग बुझाई भी तो उनके हाथ या हथेलियाँ आग बुझाने में तनिक भी क्यों नहीं जले। नेताजी की मृत्यु संबंधी सभी गोपनीय फाईलें जो कि नेहरुजी के निजी सचिव मौहम्मद युनूस की देखरेख में थी वे कैसे और क्यों नष्ट या गुम कर दी गई? कोई भी सैनिक अधिकारी या जनरल नेताजी का स्वागत करने तैहाकू हवाई अड्डे पर क्यों नहीं

आया? नेताजी के ब्रीफकेसों में रखे उनके आवश्यक दस्तावेजों, अढ़ाई-तीन मन सोना और जेवरात, उनकी गीता, चण्डी की मूर्ति, घड़ी हिटलर द्वारा दिए गए सोने के सिगरेट केस का, सोने का लाईटर, सोने की कण्ठ माला, उनके मूल्यवान चश्मे, सुपारी की सोने की डिब्बी चाकू, पैन और सोने के हुक वाली बैल्ट आदि का क्या हुआ? नेताजी के निजी सेवक कुंदन सिंह ने बताया कि मेजर हसन की उपस्थिति में कथित सोना, जेवरात और उक्त सामान नेताजी के चलने के समय चार बड़े बक्सों में भरा गया था और इन वजनी संदूकों को उठाने के लिए दो हृष्ट-पुष्ट कूलियों की आवश्यकता पड़ी थी। क्विंटल से भी अधिक वजनी सोने और जेवरात आदि का वजन अधजले रूप में मात्र ग्यारह किलो कैसे हो गया?

खोसला आयोग ने ताईवान सरकार से इस दुर्घटना संबंधी रिपोर्ट क्यों नहीं माँगी? खोसला तो नेताजी का अपमान करने में इस गिरावट पर उतर आये थे कि उन्होंने नेताजी को देशद्रोही तथा जापानियों की कठपुतली भी बताया था। नेताजी के इस अपमान को तो अनेक कांग्रेसियों ने भी पसंद नहीं किया था क्योंकि वे भी नेताजी को शताब्दी पुरुष एवं कुशल महानायक मानते थे। नेताजी के प्रति इस घिनौने व्यवहार के कारण तो नेताजी के भतीजे द्विजेन्द्र नाथ बोस द्वारा कलकत्ता की अदालत में खोसला के विरुद्ध मुकदमा दायर किये जाने पर खोसला को इसके लिए माफी भी मांगनी पड़ी थी। खोसला आयोग अपनी जांच हेतु जब ताईपेई पहुँचा था तो वहाँ के मौसम प्राधिकारी, श्री बी. आर. त्यंग ने रिकार्ड देखकर बताया था कि 1945 के पूरे अगस्त माह में वहाँ कोई भी विमान दुर्घटना नहीं हुई थी। श्री त्यंग के अनुसार कथित स्थान पर विमान दुर्घटना 1944 में हुई थी न कि 1945 में। संभवतया वे चित्र 1944 वाली विमान दुर्घटना के ही ले लिए गए होंगे। श्री खोसला तो श्रीमती गांधी को खुश करने के लिए और अच्छी रायल्टी प्राप्त करने के लिए जांच के दौरान ही श्रीमती इंदिरा गांधी की जीवनी लिखते रहे और आयोग का काम और समय पूरा होने के पूर्व ही इंदिरा जी की जीवनी को उन्होंने प्रकाशित भी कर दिया था। जब आयोग ताईवान पहुँचा तो वहाँ इसे पता चला कि अगस्त, 1945 में वहाँ कोई भी विमान दुर्घटना नहीं हुई थी। खोसला ने इस सूचना को एकदम नजरअंदाज करके वहाँ से उन्होंने श्रीमती गाँधी के लिए एक खूबसूरत उपहार खरीदा जो कि दिल्ली लौटने पर स्वयं अपने हाथों से उन्होंने श्रीमती गांधी को दिया। जांच रिपोर्ट पेश करने के बाद सेवानिवृत्त इस जज खोसला को वैसी ही सुविधाएँ क्यों मिलती रही जैसे कि उन्हें सेवाकाल में उपलब्ध थी।

ब्रिटिश गोपनीय विभाग की एक रिपोर्ट के अनुसार तो वे अस्थियाँ भी जो कि रेकॉजी मंदिर में हैं, नेताजी की नहीं है। पं. बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री, श्री पी.सी. सेन ने भी 7.5.1965 को कोलकाता में संवाददाताओं को यह बताया था कि उनकी जापानी यात्रा के दौरान कुछ विशेष लोगों ने उनको यह बताया था कि रेकॉजी वाली अस्थियाँ नेताजी की नहीं हैं। नेताजी के भतीजे अभियनाथ बोस, अशोक नाथ बोस, सुब्रत बोस तथा भतीजी लता बोस ने भी उन अस्थियों को नेताजी की अस्थियाँ मानने से इंकार करते हुए उनके भारत लाये जाने के प्रयासों की जमकर निंदा की है। उनका कहना है कि जापान में नेताजी का नाम बच्चे-बच्चे की जुबां पर है। यदि वे अस्थियाँ नेताजी की होती तो वहाँ अवश्य ही सील कराकर वे पुलिस या सैनिक हिरासत में रखी जाती। उनके अनुसार हम भारतवासी सीधे जरूर हैं पर इतने भोले और मूर्ख भी नहीं हैं कि किसी भी अज्ञात व्यक्ति या जानवर की अस्थियों को आंख मूँदकर नेताजी की मान लें। कुछ लोगों ने अब नेताजी की मृत्यु का एक ऐसा प्रमाण पत्र भी दिखाना शुरू कर दिया है जो कि 13 अगस्त, 1988 को ही तैयार किया गया है जबकि नेताजी की मृत्यु 18 अगस्त 1945 को हुई बताई गई है।

शाहनवाज समिति के समक्ष प्रस्तुत ब्रिटिश सरकार की एक रिपोर्ट के पृष्ठ 38 पर लिखा है कि तेहरान से प्राप्त विश्वसनीय जानकारी के अनुसार रूसी अधिकारियों ने बताया है कि नेताजी रूस में हैं और वहाँ से उन्होंने नेहरू जी को लिखा था कि वे भारत आना चाहते हैं। श्यामलाल जैन द्वारा खोसला आयोग को 31.12.1971 को दिए गए एक बयान से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि पं. नेहरू जानते थे कि नेताजी रूस में हैं। श्री जैन ने बताया कि श्री आसफ अली जो कि आजाद हिंद समिति के संयोजक थे, उनके नई दिल्ली के दरियागंज वाले निवास स्थान पर 26-27 दिसंबर, 1945 को पंडित नेहरू स्वयं पधारे थे। उस समय पं. नेहरू भी उस समिति के सदस्य थे जबकि श्री श्याम लाल जैन उस वक्त आसफ साहेब के स्टेनो थे। आसफ साहेब से नेताजी के रूस में होने संबंधी बात करते हुए अपनी अचकन से नेहरूजी ने तिथि और टिकट युक्त लिफाफे में से एक पत्र निकालकर श्री आसफ साहेब को पढ़ाया और उन्होंने उस पत्र की चार प्रतियाँ टाईप करने के लिए श्री जैन को दे दिया। श्री जैन द्वारा दिया गया कथित पत्र का सारांश निम्नानुसार है :

नेताजी सुभाषचंद्र बोस साईगौन से विमान द्वारा देरेन (मंचूरिया) में अपराह्न 1.30 बजे आये वहाँ उन्होंने केले खाकर चायपान किया। वहाँ एक मोटर जीप पहले से ही खड़ी थी। जिस विमान से वे आए थे, वह जापानी बम वर्षक विमान था और भारत को आजाद कराने के लिए विदेशों में बसे हुए भारतीयों द्वारा नेताजी को दिए गए बेशकीमती जेवरातों और अपार सोने से भरे हुए कई ब्रीफकेस उसमें रखे हुए थे। जनरल शिदैई, एक

मुसलमान, एक सिख और एक हिंदु के साथ फिर भी वे उस जीप में बैठ गए। जीप रूसी सीमा क्षेत्रें में प्रवेश कर गई और लगभग 3 घंटे बाद उसी हवाई अड्डे पर लौट आई। जो व्यक्ति नेताजी को जीप में ले गया था, उसने आकर विमान के पायलेट को सूचित किया कि नेताजी को रूसी क्षेत्र में पहुँचा दिया गया है। उसके बाद वह विमान टोकियो के लिए उड़ गया। श्री जैन के अनुसार उस समय पं. नेहरू ने ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री क्लीमेंट ऐटली के नाम भी एक गोपनीय पत्र टाईप कराया जो कि इस प्रकार था :

प्रिय श्री ऐटली जी,

मुझे विश्वसनीय सूत्रों से पता चला है कि आपके युद्ध अपराधी सुभाषचंद्र बोस को स्टालिन ने रूस में प्रवेश करने की अनुमति दे दी है। कृपया इसे नोट करते हुए जो भी कार्रवाई करना उचित समझें, करें।

आपका,

(जवाहरलाल नेहरू)

श्री एटली ने प्रधानमंत्री के पद से हटने के बाद अपनी भारत यात्रा के दौरान 12 अक्टूबर को उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. संपूर्णानंद को नेताजी के रूस में पहुँचने संबंधी वक्त वर्णित वही बात विस्तार से बताई थी। ब्रिटिश सरकार के वरिष्ठ गुप्तचर अधिकारी रह चुके जासूस श्री धर्मेन्द्र गौड़ ने तब रिकार्ड की गई उस वार्ता की टेप पर रहस्योद्घाटन अप्रैल, 1982 में किया था। जापान के विदेश मंत्री ने भी जांच आयोगों को बताया था कि नेताजी मंचूरिया होते हुए रूस पहुँच गये थे। जर्मनी की इंटर प्रेस नामक सुपरिचित गुप्तचर एजेंसी ने भी 1949 में प्रकाशित किया था कि उसके पास बोस के रूस में होने के ठोस प्रमाण हैं। शिकागो ट्रिव्यून के अमेरिकी पत्रकार अल्फ्रेड वाग ने 29.8.1945 को छापी रिपोर्ट में दावा किया है कि कथित विमान दुर्घटना के कई दिन बाद वे नेताजी से सिंगापुर में मिले थे और अब वे साईगौन में हैं। लार्ड माऊँट बैटन ने भी नेताजी की मृत्यु पर तनिक भी विश्वास न करके यहाँ तक कह दिया था कि बोस के भूमिगत हो जाने की बात पर पर्दा डालने के लिए ही जापानी समाचार प्रसारित किया गया है। 1946 में केंद्रीय गुप्तचर विभाग द्वारा बावेल को दी गई गुप्त रिपोर्ट के अनुसार भी बोस मास्को में शिलाजी मलान नाम से रह रहे हैं और यह रहस्य काबूल में रूसी राजदूत ने तथा तेहरान में रूसी वाईकल कौंसिल द्वारा 1946 में खोला गया था। तेहरान स्थित रूस के उप वाणिज्यिक दूत श्री मेराडाफ का भी यही कहना था कि बोस रूस में हैं।

संयुक्त समाजवादी दल के बुलंदशहर निवासी नेता और आजाद हिंद फौज में अधिकारी रह चुके श्री अब्बास बताते हैं कि यह सरासर झूठ है कि नेताजी की मृत्यु विमान दुर्घटना में हुई है जबकि उन्होंने खुद नेताजी के साथ कथित दुर्घटना के 8 दिन बाद ही सिंगापुर में कई महत्त्वपूर्ण मामलों में घंटों विचार-विमर्श किया था। ट्रेवेन सेन मुम्बई ट्रेड यूनियन के नेता ने भी 1949 में फ्रांस के मार्सेल्स के हवाई अड्डे पर नेताजी से भेंट करने का विवरण देते हुए यह बताया है कि नेताजी डी. वलैरा से मिलने आयरलैंड जा रहे थे। 24.1.1951 को हिंदुस्तान स्टैंडर्ड में और 25.1.1951 को आनंद बाजार पत्रिका में प्रकाशितानुसार शाहनवाज खां ने एक सभा में यह बताया था कि नेताजी शीघ्र ही वापस आ ज़ाएँगे। उन्होंने 24.11.1961 को लोक सभा डिवेट में भी कहा था कि नेताजी जीवित थे। 1949 के शीतकाल में स्टालिन ने तुरंत उनको नजरबंद करके कहीं साइवेरिया में रखा। हो सकता है कि बाद में वहीं पर उनकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई हो या स्टालिन के आदेश पर रूसियों ने युद्ध के बंदियों वाले शिविर में कैद अन्य क्रांतिकारी की तरह उनकी भी हत्या कर दी हो। यह भी संभव है कि साईबेरिया या किसी अन्य जेल में वे आज भी बंदी हों या वहाँ से भाग कर कहीं अज्ञात वास कर रहे हों। इस प्रकार दोनों आयोगों की जांच के बाद भी बोस की चीनी आर्मी में जनरल के रूप में, मंगोलिया में व्यापारी वेष में, स्टालिन के कारागार में होने के तथा भारत में कई स्थानों पर साधु-सन्यासी के रूप में देखे जाने की अनेक चर्चायें हैं, पर न जाने उनमें कितनी सच्चाई है। हाँ, इतना सच जरूर है कि नि:संदेह वे जनता के दिल-ए-महबूब थे।

1945 से ही नेताजी के जीवित होने के समाचार प्रकाशित करने में आनंद बाजार पत्रिका, आज और सन्मार्ग आदि समाचार पत्रों में गहरी रुचि ली थी। नेहरूजी से नेताजी संबंधी जांच कराने की मांग भी जनता ने ही की थी, लेकिन नेहरूजी उसकी मांग को बराबर अनसुना करते रहे थे। नेताजी स्मारक समिति के तत्वाधान में आयोजित एक बैठक में अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अधिवेता डॉ राधा विनोदपाल की अध्यक्षता में एक गैर सरकारी जांच समिति गठित करने का जब निर्णय लिया गया तो पं. नेहरू दुविधा में पड़ गये। शायद उन्हें भय था कि कहीं यह समिति यह सिद्ध न कर दे कि नेताजी की मृत्यु उस विमान दुर्घटना में नहीं हुई। इसलिए 5 अप्रैल 1956 को अपने पूर्ण विश्वासी शहनवाज खां की अध्यक्षता में उन्होंने तीन सदस्यीय पहल जांच आयोग गठित किया। इसके अन्य दो सदस्य एम. एन. मैत्रेय और नेताजी के बड़े भाई सुरेश चंद्र बोस थे। शहनवाज और मैत्रेय की तो नेहरूजी में पहले से ही गहरी निष्ठा थी) जबकि नेहरूजी को यह आशा थी कि धन और उच्च पद का प्रलोभन देकर सुरेश बोस से भी वे अपनी इच्छा के अनुसार रिपोर्ट तैयार कराने में सफल हो जाएँगे, लेकिन ऐसा हुआ नहीं, क्योंकि सुरेश बोस को वे अपनी लच्छेदार बातों में नहीं उलझा सके। सुरेश बोस का कहना है

कि नेहरू जी द्वारा पहले ही सुझाये गए अनुसार शहनवाज खां इस रहस्य को सुलझाने में सहायक होने वाले और नेताजी के शुभ चिंतक रहे जनरल ओशिमा, जनरल किवावे, जनरल याकुरु, श्रीमती शिदैई और श्रीमती तोजो आदि से बिल्कुल भी नही मिले। किसी प्रकार मैंने उनको ताईपेई चलने को मनाया भी तो ऐन मौके पर नेहरू जी से संपर्क करने पर शाहनवाज खां को वहाँ चलने का अपना कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। सुरेश बोस ने शहनवाज खां द्वारा तैयार की गई उस रिपोर्ट को पूर्व नियोजित, मनघड़ंत और झूठी बताकर उस पर अपने हस्ताक्षर भी किए। शहनवाज से तो नेहरू जी इतने प्रसन्न हुए कि जांच रिपोर्ट के बाद अपनी सरकार में उनको मंत्री पद ही दे दिया था। इसी प्रकार इंदिरा जी के कार्यकाल में गठित दूसरे आयोग के अध्यक्ष गोपाल दास खोसला ने भी पहले आयोग वाली बातों को ही दोहरा दिया था जिससे उक्त दोनों रिपोर्टों का देश भर में विरोध हुआ और लगभग सभी दलों के नेताओं ने रिपोर्टों की विश्वसनीयता पर संदेह व्यक्त किया। सांसद समर गुहा ने तो संसद में ही रिपोर्टों की प्रति फाड़ दी थी। डॉ. कर्णसिंह, पुरुषोत्तम गणेश मावलंकार, चित बसु और दिलीप चक्रवर्ती आदि नेताओं ने दोनों रिपोर्ट रद्द करने हेतु तात्कालीन प्रधानमंत्री से अनुरोध किया जिसे कि श्री मोरारजी देसाई ने तत्काल मान लिया और इस प्रकार दोनों ही आयोगों के निष्कर्ष अंततः 28.8.1978 को रद्द कर दिये गये।

सुनने में आया है कि नेहरू जी भारत में उनकी वापसी नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने नेताजी की राजनीतिक हत्या करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनके कार्यकाल में नेताजी पर कोई भी विशेष कार्यक्रम प्रसारित करने की मनाही थी। इतिहास की पुस्तकों में भी उनकी भरपूर उपेक्षा की गई और संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में भी उन्होंने नेताजी का कोई भी चित्र नहीं लगने दिया था। नेताजी का चित्र तो वहाँ 23 जनवरी 1978 को जनता पार्टी के शासन में ही लग पाया हैं वे तो यह भी नहीं चाहते थे कि किसी आयोग का गठन हो, फिर भी जो दो आयोग बिठाये गये वे नेहरू हितैषी ही थे और उन्होंने नेहरू और इंदिरा का ही बचाव किया था। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी इस प्रयोजनार्थ श्री एम.के. मुखर्जी की अध्यक्षता में मई, 1999 में एक जांच आयोग गठित किया था।

8 नवंबर 2005 (मंगलवार) को अपनी रिपोर्ट गृह मंत्रालय को सौंपते हुए आयोग सचिव और न्यायमूर्ति श्री एम.के. मुखर्जी ने भी ताईवान की विमान दुर्घटना में नेताजी सुभाषचंद्र बोस की मौत वाले तमाम दावों को खारिज करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि ताईवान सरकार ने आयोग से इस बात की पुष्टि कर दी है कि 14 अगस्त से 20 सितंबर, 1945 के बीच ताईहोकू के ताईपेई में कहीं भी कोई ऐसी विमान दुर्घटना हुई ही नहीं थी। इस प्रकार नेताजी संबंधी ऐसी ढेर सारी बातें आज भी रहस्य के घेरे में ही हैं।

मौजूदा सरकार को चाहिए कि उस प्रश्नास्पद विमान यात्रा की वास्तविकता से वह जनता को अवगत कराके नेताजी के शेष बचे दस्तावेजों की वह प्रदर्शनी लगवाए जो कि नेताजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि सिद्ध हागी

सहायक संदर्भ -

1. क्या नेताजी जीवित हैं? समर गुहा
2. सुभाष चंद्र बोस - अंगार पुरुष... वचनेश त्रिपाठी
3. भूतिगत सुभाष... रणजीत पाँचाले
4. महानायक... विश्वास पाटिल

द्वारा श्री आर.डी. गुप्ता
संपर्क 48/515, टाईप-4, सैक्टर 2, प्रथम तल, (सीजीएस कॉलोनी) अन्टाप हिल, मुम्बई-400 037 (महाराष्ट्र)

मंच की बिहार शाखा की कार्यकारिणी की बैठक

○ अशोक कुमार तिवारी

विगत 5 अप्रैल, 2009 को पटना के पुरन्दरपुर स्थित 'बसेरा' में राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार शाखा की राज्य कार्यकारिणी की बैठक में 14 अप्रैल 2009 को बाबा साहब डॉ. भीमाराव अम्बेडकर की जयंती के उपलक्ष्य में 'भारतीय राजनीति में सामाजिक चेतना और डॉ. अम्बेडकर' विषय पर एक विचार-संगोष्ठी आयोजित करने का निर्णय लिया गया। मंच के राष्ट्रीय महासचिव तथा बिहार इकाई के अध्यक्ष सिद्धेश्वर की अध्यक्षता में संपन्न इस बैठक में विगत 29 मार्च, 2009 को नई दिल्ली के राजेंद्र भवन में आयोजित मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में लिए गए निर्णयों से अध्यक्ष ने अवगत कराते हुए कहा कि मंच के उद्देश्यों को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए सजग एवं सक्रिय सदस्यों के साथ साथ सभी राज्यों की शाखाओं के क्रियाशील होने की आवश्यकता है।

राज्य कार्यकारिणी में अशोक कुमार तिवारी को मीडिया प्रभारी, लखन सिंह को कार्यालय सचिव तथा रामविलास मेहता को कार्यकारिणी सदस्य के रूप में मनोनीत किया गया। साथ ही देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाली समानधर्मी संस्थाओं से संपर्क स्थापित कर एक समन्वित प्रयास करने की आवश्यकता जताई गई। लखन सिंह के द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के उपरांत बैठक समाप्त की गई।

- अशोक कुमार तिवारी, पटना।

DENSA
PHARMACEUTICALS PVT. LTD.

Fact. Add. :Plot No. 10, Dewan & Sons Udyog Nagar,
Taluka Palghar, Dist. Thane, MAHARASHTRA
Phone No.: (952525) 55285, 54471, Fax: 55286

&

DANBAXY
PHARMACEUTICALS PVT. LTD.
(SOFT GELATIN)

Fact. Add: Plot No. K-38, MIDC Tarapur,
Dahisar, Dist. Thane, MAHARASHTRA

Office Address:

1, Anurag Mansion, Ashokvan,
Shiv Vallabh Raod, Dahisar (E),
Mumbai-400068
Phone No.: 28974777, Fax: 28972458

MR. DEVENDRA KUMAR SINGH, C.M.D

THE PEOPLE'S CO-OPERATIVE HOUSE CONSTRUCTION SOCIETY LTD.

KANKERBAGH, PATNA-800020.

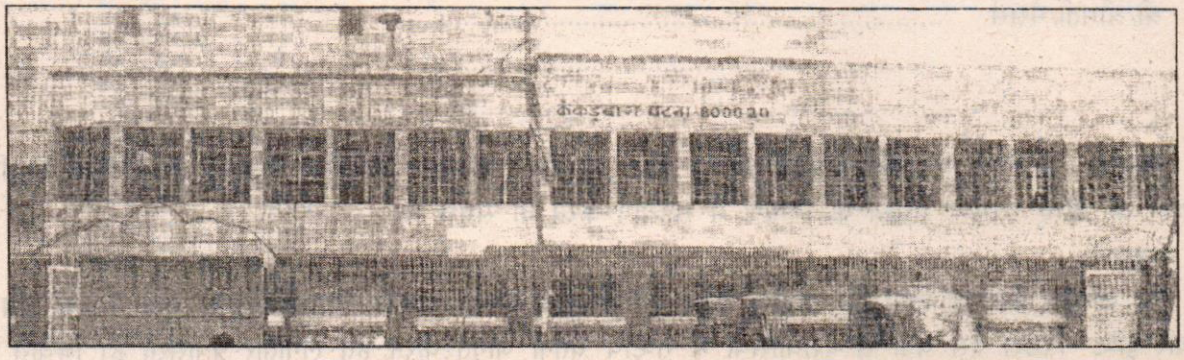

HIGHLIGHTS:

1. For members of lower & middle income group of people this society is said to be one of the largest co-operative house construction societies in Asia.
2. In the first phase 131.12 acres of land acquired by Government of Bihar were handed over to this society.
3. The society has got an opportunity to attract 1730 members from lower income group of people.
4. In all 1600 plots were bifurcated in planning out of which 10 plots were reserved for community hall, office building, godown and four-storied building for common utilities.
5. 1400 houses have so far been constructed by the members.
6. 500 members have been given housing loan through this society.
7. Boundary walls in 15 parks have already been constructed by the society.
8. In most of the sectors metalled & cemented roads have also been construcred.
9. Efforts are being made to improve the drainage system, to have plantation and lighting facilities.
10. In the second phase 7 acres of land have been purchased at Jaganpura village in which six houses have been constructed so far.
11. Out of 96 plots 95 plots have already been allotted to the members and one plot has been reserved for common utilities.
12. The society makes available its community hall to the members on priority basis for the marriage ceremony of their sons & daughters at half of the preseribed charges.
13. As far as possible the society tries to provide street light, maintain roads, clean manholes, construct park and other development activities.
14. All those members who have not filled up their nominee forms as yet are requested to deposit the forms duly filled in after getting the forms from the office of the society.

WITH REGARDS TO THE MEMBERS.

L.P.K. Rajgrihar	**Sidheshwar Prasad**	**Prof. M.P. Sinha**
Chairman	Vice Chairman	Secrectary

विचार दृष्टि

(राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका)

राष्ट्रीय कार्यालय : 'दृष्टि', यू-207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-110092

पत्रांक: विदृ/399 दिल्ली, दिनांक : 22 जुलाई 2009

सेवा में,

श्री/श्रीमती/मेसर्स .....

.....

.....

विषय: विज्ञापन-दर-तालिकानुसार 'विचार दृष्टि' में अपने प्रतिष्ठान का एक विज्ञापन देकर इसके नियमित प्रकाशन के जरिए स्वस्थ्य समाज के निर्माण में सहयोग करने के संबंध में।

महाशय,

यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था–राष्ट्रीय विचार मंच के मुख-पत्र के रूप में 'विचार दृष्टि' पिछले दस वर्षों से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने हेतु लगातार प्रयासरत है। विचारों पर केंद्रीत आधुनिक दृष्टि और बिना कोई चटपटी मसालेदार व अश्लील सामग्री प्रस्तुत किए संभवत: यह पहली पत्रिका है, जो हिंदी पत्रकारिता में आने वाले परिवर्तनों का कुछ आभास देती है और पाठकों को स्वस्थ्य समाज और सबल राष्ट्र के निर्माण हेतु स्वस्थ मानसिक खुराक प्रदान करती है। बड़े स्तर पर समाज या संचार माध्यम इसे तवज्जो दें या नहीं, मगर समाज के प्रबुद्ध एवं सद्चित्तजन तथा रचनाकार एवं साहित्य से जुड़े सुधी लोगों के मन को इसमें लौ लग चुकी है जिसके बल पर मुझे लगता है कि बारिश की मामूली फुहार से यदि एक कोपल भी फूट जाती है, तो लोगों को अहसास होगा कि जमीं पर किसी ने मुट्ठी भर तारे बटोर लाए हैं।

बिना कोई सरकारी आर्थिक सहयोग के यह पत्रिका अपने उद्देश्यपूर्ण संघर्ष के लिए अग्रसर है यह सोचकर कि

कहीं न कहीं से किसी न किसी को, शुरुआत तो करनी होगी,
भारत की तस्वीर बदलनी होगी, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी।

तो आइए, आप भी इस लड़ाई का एक हिस्सा बन निम्नांकित विज्ञापन-दर-तालिकानुसार अपने प्रतिष्ठान का एक विज्ञापन देकर इसके नियमित एवं स्तरीय प्रकाशन के जरिए स्वस्थ्य समाज के निर्माण में सहयोग प्रदान करें, यह आप और आपके प्रतिष्ठान की गरिमा के अनुरूप होगा और राष्ट्रीय दायित्व के निर्वहन में आपका यह सहयोग एक महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाएगा।

विज्ञापन राशि चेक/बैंक ड्रॉफ्ट **'विचार दृष्टि'** के नाम से अथवा नकद अधिकृत अधिकारी को देय होगी। पत्रिका की पाँच हजार प्रतियाँ 10½" x 7½" (मुद्रित स्थान 9½" x 7") आकार की प्रकाशित होती हैं।

विज्ञापन-दर-तालिका

	आवरण पृष्ठ			भीतरी पृष्ठ	
1.	मुख्य पृष्ठ सुरक्षित	सुरक्षित	6.	रंगीन पूर्णपृष्ठ	रु. 10,000/-
2.	अंतिम रंगीन पूर्णपृष्ठ	रु. 25,000/-	7.	रंगीन आधा पृष्ठ	रु. 10,000/-
3.	अंतिम रंगीन आधा पृष्ठ	रु. 15,000/-	8.	सादा पूर्णपृष्ठ	रु. 2,500/-
4.	पृष्ठ सं. एक और दो रंगीन पूर्णपृष्ठ	रु. 15,000/-	9.	सादा आधा पृष्ठ	रु. 1,500/-
5.	पृष्ठ सं. एक और दो रंगीन आधा पृष्ठ	रु. 8,000/-	10.	सादा चौथाई पृष्ठ	रु. 500/-

नोट: उपर्युक्त दर एक अंक के विज्ञापन का है। कुल चार अंकों में विज्ञापन देने से 20 प्रतिशत की रियायत दी जाती है।

विनीत संपादक

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका ''विचार दृष्टि'' के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके जुलाई-सितम्बर 2009 के प्रकाशन पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।

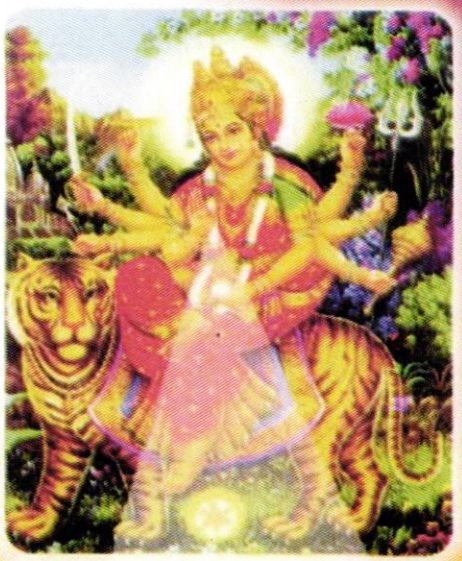

Arvind Kumar

Rajiv Kumar

RAJIV PAPER MART

Deals in :

All Kinds of White Printing Paper,

Art Paper

&

L.W.C. etc.

S-447, School Block-II, Shakarpur, Delhi-110092

9968284416, 98102508349891570532, 9871460840

Ph. : (O) 55794961, (R) z22482036

Emmar MGF • Creating & New India

EMAAR MGF

CREATING A NEW INDIA

प्रकाशक, मुद्रक स्वामी सिद्धेश्वर द्वारा 'दृष्टि', यू–207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली–92 से प्रकाशित एवं प्रोलिफिक इन्टरकारपोरेटिड, एक्स–47, ओखला फेस–2, नई दिल्ली से मुद्रित। संपादक – सिद्धेश्वर